योग सिद्धान्तो और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 30 जुलाई, 1997 अंक 4

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
श्री गोविन्द सोनी
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

जुलाई 1997

इस अंक के लेख

❁ नमामि हरि परम् 1
❁ अमृत कण 2
❁ वैराग्य की साधना (विशेष लेख) 3
–योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
❁ योग साधना एवं सिद्धियाँ (सम्पादकीय) 6
❁ सम्पुट योग की साधना से बन्धनमुक्ति 9
–आचार्य चन्द्रहास शर्मा
❁ किमस्ति योग: (कविता) 12
–द्वारिका प्रसाद शर्मा
❁ श्री गुरुदेव की सर्वज्ञता 14
–केशवदेव उपाध्याय
❁ योग : विशेष भक्ति 17
पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
❁ गुरुदेव के संस्मरण 20
–रमाकान्त उपाध्याय
❁ श्री सद्गुरुदेव का अभिनन्दन पर्व 22
–जयप्रकाश शर्मा
❁ मेरे सद्गुरुदेव परमब्रह्म 24
–अवनीश कुमार भटनागर
❁ प्राण तत्व की वैज्ञानिक कसौटी 28
–श्रीराम आचार्य
❁ योगासन और उनके लाभ 31
❁ शरीर छीजता क्यों है ? 34
–डा० अविनाशचन्द्र
❁ गुरु और अवतार 39
–विवेकानन्द
❁ उन्नति के लिए इच्छाशक्ति जागृत करें 40
–विजय पण्डित

वार्षिक शुल्क 65/- रु० । एक प्रति 6/ रु०
द्विवार्षिक शुल्क 120/- रु० । आजीवन शुल्क 651/- रु०

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षणकेन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30 अंक 4	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	जुलाई 1997

नमामि हरिं परम

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

श्रीमद्भागवत् 12/13/13

अर्थात्

जिनके नाम का संकीर्तन सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है, जिनको किया गया प्रणाम सम्पूर्ण दुःखों को शान्त कर देता है, उस परमतत्त्व स्वरूप श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

अमृत कण

यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावा
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति।।
(मुण्डको. 2/1/1)

हे सौम्य! जिस प्रकार से अच्छी प्रकार से प्रज्वलित अग्नि से हजारों तत्सदृश चिन्गारियां निकलती हैं उसी प्रकार से उस अक्षर अथवा ब्रह्म से सकल प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।
(श्रीमद्भगवद्गीता 2/66)

जो योगी नहीं है उसे सम्यक् बुद्धि प्राप्त नहीं होती जिसे सम्यक् बुद्धि प्राप्त नहीं है उसकी सुभावना नहीं होती। सुभाव न होने से मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और बिना शान्ति के सुख कहाँ से हो सकता है?

विशेष लेख

वैराग्य की साधना

योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वैराग्य बिल्कुल मोक्ष का स्वरूप ही है। क्योंकि वह वैराग्य पुरुष ख्याति वैराग्यरूप है। इस वैराग्य के प्राप्त हो जाने पर प्रत्युदित ख्याति योगी अपने आपको कृतार्थ बना लेता है। इस वैराग्य के प्राप्त हो जाने पर गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाता है और आत्मा विशुद्ध केवली भाव को प्राप्त हो जाया करता है। उस समय प्रत्युदित ख्याति योगी विवेक ज्ञानरूप अपनी धारणा में दृढ़ हुआ इस प्रकार मानता है–

"प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः छिन्नः श्लिष्टपर्वा, भवसंक्रमो यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायत इति, ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यं एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।"

अर्थात् प्राप्त करने लायक वस्तु मैंने प्राप्त करली, क्लेश क्षीण कर दिये, पोरी से पोरी की तरह जुड़ा हुआ संसार चक्र मैंने काट दिया जिसके कारण जन्म-मरण होता था। अब मैं नित्य शुद्ध,बुद्ध, मुक्त स्वभाव अजर-अमर नित्य तत्व हूँ। इस प्रकार पर वैराग्य मोक्ष का नान्तरीयक सिद्ध हुआ। श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भगवतगीता में मन की चंचलता की एकाग्रता को परम साधना माना है। गीता का वह प्रकरण इस प्रकार है। अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण जी से प्रश्न किया:-

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्।।
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

अर्जुन ने कहा 'हे मधुसूदन। साम्यत्वेन जो योग आपने कहा है वह सर्वथा ठीक है। चंचलता से इस मन की स्थिरता मैं बिल्कुल नहीं देखता हूँ। हे कृष्ण! यह मन बहुत ही चंचल, बलवान एवं मथल डालने वाला है। जिस प्रकार वायु को नहीं रोका जा सकता उसी प्रकार से इस मन को भी पकड़ा नहीं जाता, अर्जुन के इस प्रकार प्रश्न करने पर भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्ते।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योवाप्तुमुपायतः।।

हे महाबाहु अर्जुन! यह बात बिल्कुल सत्य है कि मन बहुत ही कठिनता से वश में आनेवाला और बहुत ही चंचल है। किन्तु अभ्यास और वैराग्य द्वारा पकड़ा जा सकता है। जो लोग असंयतात्मा हैं, हे अर्जुन! मेरा विचार है उनको योग कभी प्राप्त नहीं हो सकता। और जिन्होंने अपने आप पर नियन्त्रण किया है वह प्रयत्न करते हुए अवश्य ही उपाय कर सकते हैं। इसी सिद्धान्त को कठोपनिषद् में उपदेश करते हुए यमदेव ने इस प्रकार कहा है–

यस्त्व विज्ञानवान, भवत्य युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्य वश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।।

अर्थात् जो मनुष्य अविज्ञानवान होता है

अर्थात् जिसको मन पर नियन्त्रण नहीं होता उस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में नहीं रहती हैं जिस प्रकार बिगड़े घोड़े सारथी के वश में नहीं हुआ करते। इसी प्रकार जो व्यक्ति ज्ञानवान है और युक्तमन वाला है, उसकी इन्द्रियाँ वश में हुआ करती हैं जैसे अच्छे घोड़े सारथी के वश में हुआ करते हैं।

अतः उपर्युक्त लेख से यह तो भली प्रकार सिद्ध हो गया कि अभ्यास परायण योगी अपनी इन्द्रियाँ और मन पर नियन्त्रण प्राप्त करके, अपनी प्रगति को ऊँचा बढ़ा सकता है। और वह प्रेम से परम् श्रेय भागी बन ही सकता है। कदाचित्-भाग्यवश मनुष्य पर वैराग्य को प्राप्त हो जावे तो वह गुण धर्मों से छूटकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो ही जाया करता है। क्योंकि वैराग्य मोक्ष का नान्तरीयक माना गया है। हमारे शास्त्रों में जहाँ अभ्यास के भिन्न-भिन्न प्रकार मिलते हैं उसी प्रकार से सांकेतिक भाषा में वैराग्य का महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। वह इस प्रकार के छिपे हुये भाव हैं कि जिनको मनुष्य सहसा समझ भी नहीं सकता। वैराग्य शब्द का अर्थ है विगत राग हो जाना। ज्यों -ज्यों इन्द्रियाँ अपने विषयों में राग परायण हो जाती हैं त्यों-त्यों वे सब अपने विषयों को छोड़ने में असमर्थ हो जाया करती हैं। इस विषय में हमारे पूर्वाचार्यों का इतिहास और स्मृति के रचयिताओं का बिल्कुल एक मत है। श्री मनुजी महाराज ने अपनी मनुस्मृति में बिल्कुल साफ और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है–

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्व पहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठे विद्वान यन्तेव वाजिनाम्।।
इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोष मृच्छत्य संशयम्।
सनियम्य तु तान्येव तत सिद्धिं नियच्छति।।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन् शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित।।
वशे कृत्वेन्द्रिय ग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन् योगतस्तनुम्।।
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वोचयेनरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।।

अर्थात मनुष्य को चाहिए कि चित्त का अपहरण करने वाली इन्द्रियों को इस प्रकार वश में रखे जिस प्रकार सुसारथी घोड़ों को रक्खा करता है। इन्द्रियों का अनुगामी होने से हजारों प्रकार के दोष पैदा हो जाया करते हैं और उनको संयम में ले आने पर जल्दी ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

उत्पन्न हुई कामनायें, कामनाओं के उपभोग से कभी भी शान्ति की प्राप्त नहीं होती, प्रत्युत और अधिक बढ़ती चली जाती हैं। जैसे अग्नि में घृत आदि हवि डालने से अग्नि और अधिकाधिक प्रज्वलित हो जाती है उसी प्रकार इन्द्रियों का उपभोग करने पर उनका लौल्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही चला जाता है। क्योंकि कभी अजितेन्द्रिय मनुष्य को वेद, त्याग यज्ञ नियम और तप सिद्ध नहीं हुआ करते। अतः मनुष्य को चाहिए कि सारी इन्द्रियों के समूह और मन पर नियन्त्रण करके और योग के द्वारा अपने शरीर की रक्षा करते हुए कामनाओं को प्राप्त करें। जो मनुष्य सुन करके, स्पर्श करके, देख करके, भोग करके और गन्ध ग्रहण करके न प्रसन्न होता है न ग्लानि को प्राप्त होता है। उसको जितेन्द्रिय समझना चाहिए। इन सब शास्त्रीय सिद्धान्तों को पढ़कर और सुनकर मनुष्य एक ही निश्चय पर पहुँचता है कि इन्द्रियों का अपने विषयों में राग होना ही वासनिक प्रवृत्ति का, मुख्य कारण है। यदि सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में विगतराग हो जायें तो उनकी प्रवृत्ति कभी भी उनमें हो ही नहीं

सकती। इस विषय को इस प्रकार समझ लीजिये—जैसे हमारी चक्षु इन्द्रिय की प्रवृत्ति सुन्दर रूप देखने में रागान्वित है तो हमारे को सुन्दर रूप की ओर आकृष्ट कर देती है। यदि उसी चक्षु इन्द्रिय के सामने किसी मलमूत्रादि घृणित दृश्य को लाया जाय तो वह कभी भी देखना पसन्द नहीं करेंगी। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय कभी भी उसका गंध ग्रहण करना, स्पर्श करना नहीं चाहेंगी क्योंकि यह उनमें विगत स्पृह है। अतः कदाचित् किसी भाग्यवान साधक को वैराग्य प्राप्त हो जाय तो उसका उसकी इन्द्रियों पर स्वतः ही नियन्त्रण हो जाया करता है। हम सबको चाहिए कि हम जहाँ जिस-जिस अभ्यास में प्रयत्नशील रहते हैं, वहाँ उसी प्रकार वैराग्य के लिए भी प्रयत्नशील रहें।

(क्रमशः)

श्रेष्ठता

प्रत्येक व्यक्ति पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ और आवश्यक प्राणी है। किसी को भी अपने आपको अनावश्यक तुच्छ अथवा हीन नहीं समझना चाहिए। यदि वही अपना मूल्य न समझेगा तो दूसरे उसे क्यों आवश्यक मानेंगे। सबसे बड़ी बात है कि मनुष्य न दीन-हीन है न तुच्छ उसे सदैव मनुष्यत्व और मनुष्य सुलभ शक्तियों में विश्वास बनाये रखना चाहिए। अन्य प्राणियों की भाँति वह न गया गुजरा है न ही तुच्छ।

योग साधना एवं सिद्धियाँ

श्रुति में **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** का उद्‌घोष है। इस का अर्थ यह है कि बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन का अधिकारी नहीं होता। परन्तु यह बल क्या शारीरिक बल है अथवा धन, विद्यादि बल? यह बल मानसिक बल ही है। विभूतिवान योगी ही बलयुक्त कहा जा सकता है। विभूतियों के अनुभव कर लेने पर योगी को मुक्ति पर्यन्त सभी सूक्ष्म वस्तुओं में भी विश्वास हो जाता है। इसीलिये व्यास देव जी अपने भाष्य में लिखते हैं कि योगी को किसी प्रकार एक योग भूमिका का साक्षात्कार कर लेना चाहिए तभी उसकी योग एवं मुक्ति की निष्ठा बनती है। इससे साधना में दृढ़ता आती है। गीता में भी भगवान कहते हैं। **"एतां विभूतिं च योगं च मम यो वेत्ति तत्वत"** जो मेरी विभूति एवं योगैश्वर्य को तत्व से जान लेता है उसी की योग में अविचला निष्ठा बनती है। जब तक हम परमात्मा की विभूतियों एवं कृपाओं का अनुभव नहीं कर लेंगे तब तक परमात्मा से दृढ़ सम्बन्ध जुड़ नहीं सकता। इसीलिये परमात्मा के ऐश्वर्य का अनुभव होना आवश्यक हो जाता है। आज भौतिक विज्ञान ने भी प्रकृति के सूक्ष्मता एवं नियमों को समझकर बहुत सारी उपलब्धियाँ मानव को दी हैं। योग विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान दोनों का ही आधार प्रकृति ही है। योगी का मूल प्रकृति पर्यन्त अधिकार होता है जबकि भौतिक विज्ञानी पंच महाभूत एवं तन्मात्राओं को ही छू पाया है। प्रकृति के नियमों को समझकर आधुनिक विज्ञान ने कई आविष्कार कर दिखाये हैं। जिस प्रकार से योगी शब्देन्द्रिय और आकाश के सम्बन्ध पर संयम करके दिव्य श्रवण एवं दूर श्रवण की सिद्धि को पा लेता है उसी प्रकृति के सिद्धान्त को समझकर यन्त्रों की सहायता से हम रेडियो द्वारा दूर श्रवण कर सकते हैं। इसी प्रकार से शब्द एवं विद्युत(प्रकाश) के रहस्यों को जानकर के हम दूर बैठे-बैठे ही दूर के शब्द एवं रूप दोनों को ही दूरदर्शन यन्त्र द्वारा देख सकते हैं। योगी अपने मन की एकाग्रता से दूर-दर्शन, दूर-श्रवण की योग्यता रखता है और दूसरे को भी इस का लाभ अधिकारी समझने पर दे सकता है। दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार यह जगत् अग्नि सोमात्मक है अर्थात् अग्नि एवं शीतलता का संयोग है। उसी प्रकाश एवं शीतलता(छाया) के कारण ही हम दूरदर्शन आदि यन्त्रों में रूप को देख सकने में समर्थ होते हैं। भौतिक विज्ञानी पूर्णतया यन्त्रों पर आधारित रहता है। जिस-जिस क्षमता का यन्त्र होता है उसी उसी अनुपात से कार्यक्षमता एवं लाभ मानव को मिल पाता है। योगी की उपलब्धि यन्त्रों पर आधारित नहीं। वह अपने शरीर को ही यन्त्र बनाकर बाह्य प्रकृति से अपना सम्बन्ध स्थापित कर ज्ञान प्राप्त करता है एवं इच्छानुसार प्रकृति को बरतने में सक्षम रहता है। भूतजयी सिद्धयोगी के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार से नवप्रसूता गौ अपने बछड़े का अनुसरण करती है उसी प्रकार से पंच महाभूत एवं तन्मात्रायें आदि, योगी की इच्छाओं का अनुगमन करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि, योगी के संकल्प में इतनी ताकत आ जाती है कि उसकी इच्छा मात्र से प्रकृति उसकी सेविका होकर तदनुसार ही बरतती है। योगियों की भी साधना की भिन्नता से सिद्धियों में भी अन्तर होता है। एक योगी जो हजारों वर्षों तक शरीर को जीवित रखना चाहता है उसे मनोलय के साथ-साथ भूतजय की साधना भी करनी पड़ेगी। यह साधना गुरुगम्य है अतः सिद्धयोगी इन साधनाओं को उसी शिष्य को कराते हैं जिन्हें वे बहुत काल तक सशरीर रखना चाहते हों। सिद्धियों में जो भेद होता है वह उसकी

समाधि की दशा के आधार पर होता है। जिस की जितनी जितनी ऊँची समाधि है वह उतना ही ताकतवर एवं प्रकृति पर शासन करने वाला होता है हमारे गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से बताया करते थे कि श्री प्रभु जी डा. गोपालनन्द जी महाराज को भूतजय की सिद्धि करा रहे थे। इससे वे भूतजयी होकर सहस्त्रों वर्षों तक भौतिक देह से रह सकते थे। किन्तु ब्रह्मचारी जी की अरुचि एवं साधना शैथिल्य के कारण यह साधना छूट गई। इस प्रसंग में गुरुदेव जी बताया करते थे कि जब वह अग्नि तत्व का आकर्षक करते थे तो उनका शरीर भी अग्नि की तरह ही तपने लगता था कोई उन्हें छू नहीं सकता था। इसी प्रकार से जब वे जल तत्व की साधना करते थे तो उनका शरीर बर्फ की तरह अत्यधिक ठण्डा हो जाता था। उन्हीं साधनाओं के कर लेने पर ही योगी हिमालय की कन्धराओं मे रहकर, पृथ्वी, जल, अग्नि, आदि पञ्चमहाभूतों से अनभिघात रूप फल को पाता है। भूतजय की सिद्धि का फल बताते हुये योगदर्शन में आया है कि भूतजय की सिद्धि हो जाने पर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों का वह स्वामी होता है तथा शरीर को वज्र की भाँति बना लेता है और पृथ्वी जल आदि उसके लिये रुकावट नहीं बनते। अर्थात् वह सब प्रकार से योगी के अनुकूल बन जाते हैं।

सिद्धियों का प्रादुर्भाव:-योग दर्शन में पाँच प्रकार की सिद्धियों का वर्णन मिलता है। जो जन्म से, औषिधि से, मन्त्र से, तप से तथा समाधि से प्राप्त होती है। योगी की सिद्धियाँ समाधिजा हुआ करती हैं, उनमें मन्त्र एवं तप सहायक बन जाया करते हैं। ऋषियों ने सदा से ही मन की असीम शक्ति को पहचाना है। मन की सीमित शक्ति को असीम बनाना ही योग साधना का लक्ष्य हुआ करता है क्योंकि ऐसा हुये बिना योग की कल्पना ही व्यर्थ है। मन को शक्तिशाली बना लेने पर योगी सारे ब्रह्माण्ड पर शासन करने वाला बन जाता है। अध्यात्मज्ञान रूपी प्रासाद तक पहुँचने के लिये योगी को भिन्न भिन्न भूमिकाओं से गुजरना होता है।उन-उन भूमिकाओं में पहुंचने पर योगी को प्रकृति पर अधिकार क्षमता के साथ साथ ज्ञान की प्राप्ति दोनों युगपद् प्राप्त होती चली जाती है। जिस प्रकार से सुर्योदय हो जाने पर हमें सूर्य से उष्णता एवं प्रकाश दोनों साथ-साथ मिलते है उसी प्रकार से साधना करने वाले योगी को अध्यात्म ज्ञान के साथ-साथ प्रकृति अधिकार की क्षमता मिलती चली जाती है। यद्यपि योगी का लक्ष्य तो आत्मज्ञान ही रहना है किन्तु सिद्धियाँ उसे स्वतः ही मिल जाया करती है जिस प्रकार से काशी की ओर जाते हुये किसी यात्री को मार्ग में अनेक तीर्थ स्थल प्राप्त होते हैं उन तीर्थों की प्राप्ति में उसे अलग से कोई यत्न नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार से मुमुक्ष योगी को योग पथ मे यह शक्तियां मिलती हैं। योगी के अलौकिक शक्ति अथवा गुण ही उसकी सिद्धियां कहलाती हैं। ये सिद्धियाँ इस बात का परिचय बताती हैं कि योगी ने योग की कौन-सी सीढ़ी पार कर ली है। जिस योगी में कोई सिद्धि नहीं होती उसे बद्ध ही कहना चाहिये। -योगी का ऐश्वर्य ही उसका ईश्वरत्व है। जिस प्रकार छाया पुरुष का अनुसरण करती है उसी प्रकार से ऐश्वर्य ईश्वर अथवा योगी का अनुसरण करता है। कुछ अज्ञ लोग सिद्धियों की निन्दा करते देखे जाते है वे कहा करते हैं कि सिद्धियों की कोई आवश्यकता नहीं है अतः हेया हैं। किन्तु जिस प्रकार से अग्नि के छू जाने पर सुकुमार शिशु की देह जल जाती है तो इससे अग्नि की निन्दा करके उसका त्याग करना बुद्धिमानी नहीं कहलाता उसी प्रकार से साधना मार्ग में सिद्धियाँ उपादेया होती हैं तथा ये सिद्धियाँ योगी को स्वयं वरण किये रहती हैं।

सिद्धियाँ चित्त तत्व के विलास हैं। यह

बात भली प्रकार से समझ लेनी चाहिये कि जो भी सिद्धि, विभुति या चमत्कार का प्रादुर्भाव होता है वे प्रकृतिजन्य हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध प्रकृति अथवा मन-बुद्धि से ही है। आत्मा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः सिद्धियों को आत्मा की शक्ति समझने का भ्रम नहीं करना चाहिये। जब योगी निर्बीज समाधि में प्रतिष्ठित हो जाता है तो उस समय उसका प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। उस कूटस्थ स्थिति में कोई हलचल नहीं होती। उस समय प्रकृति की साम्यावस्था होती है। सिद्धियों को समाधि के मार्ग में विघ्न माना गया है। उसका कारण यह है कि सिद्धियाँ भी वृत्तिरूप होने से शुभाशुभ संस्कारों को ही देने वाली होती है। सिद्धियाँ भी त्रिगुणात्मिका हैं योगी का लक्ष्य गुणातीत होना है। सिद्धियों से पूर्णतया वैराग्य होने पर ही वैराग्य में प्रतिष्ठत हो सकते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में योगी को समाधि में भी कुछ न कुछ अनुभव होता ही रहता है। इसी अनुभव के रूप में योगी को प्रातिभ श्रावण आदि विशिष्ट महासिद्धियाँ प्राप्त रहा करती हैं जिनके प्राप्त होने पर योगी व्यापकता को प्राप्त होता हुआ सर्वज्ञातत्व की स्थिति को पाया करता है किन्तु यहाँ भी अभी गुणों का ही अधिकार है योगी को तो निर्बीज-निर्गुण समाधि में जाना है अतः सर्वज्ञातत्व आदि आदि परा सिद्धियाँ भी त्यागनी पड़ती हैं इसीलिये योग दर्शन में निर्बीज समाधि की दृष्टि में ये सब विघ्न बताये हैं अन्यथा तो ये महासिद्धियाँ हैं ही। योग दर्शन में सम्प्रज्ञात समाधि को असम्प्रज्ञात की दृष्टि से व्युत्थान ही माना है।-महासिद्धियों से भी जब मन उपराम हो जाता है तब पर वैराग्य की प्रतिष्ठा होती है जो निर्बीज समाधि का कारण है।

समष्टि आत्मा को जीव और व्यष्टि आत्मा को जीव कहते हैं। ईश्वर सर्व व्यापक है। जीव शरीर में आबद्ध रहता है। ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव व्यापक है। जीव अल्पज्ञ है। ईश्वर की विभूतियाँ महान् हैं। जीव पराधीन-सा है, चाहता हुआ भी अपनी इच्छा पूर्ति नहीं कर पाता।

संपुट योग की साधना से बन्धनमुक्ति

आचार्य चन्द्रहास शर्मा

उपनिषदों में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख है-परा और अपरा। अपरा विद्या पेट भरने की विद्या क्रमश्रित है। जबकि **परा विद्या** जीवन के सभी दुःखों का सदासदा के लिए अन्त करने वाली भावाश्रित विद्या है। कर्म के लिए कर्ता क्रिया करण तथा तथा कर्म करने का अधिष्ठान चाहिये। जबकि **भाव** किया नहीं जाता स्वतः होता है। जो किया न जाय स्वतः उद्‌भूत हो उसे **भाव** कहा जाता है। पराविद्या स्वयं ईश्वर की कृपा से भावरूप में होने वाली क्रिया है। भाव आत्मा के भीतर संस्थित रहते हैं। भावों का सम्बन्ध प्राणों से और मन से होता है। योग साधना इसी अर्थ में **परा विद्या** है। यह कुण्डलिनी जागरण से प्रारम्भ होकर स्वरूप स्थिति में पर्यवसित होती है। इसीलिए योगविद्या पेट भरने की विद्या नहीं है। यह जीवन को पूर्णानन्द और पूर्णशान्ति का साम्राज्य देने वाली विद्या है। इसकी प्राप्ति भावशुद्धि और भावन क्रिया द्वारा होती है। जो बुद्धि के बल से इसे प्राप्त करना चाहते हैं वे प्रकृति के विश्लेषण तक ही पहुँचकर पुनः जन्म-मरण के दुःख चक्र में पड़े रहते हैं। आत्मतत्व दीक्षागुरु की कृपा से परमगुरु तक पहुँचने पर भाव जगत की यात्रा से प्राप्त होती है। अन्तर्जगत की यात्रा ही योग साधना कहलाती है इस साधना का आधार प्राण क्रिया है। प्राण भावाश्रित होते हैं। प्राणों की वाहि का मुख्यरूप से तीन नाड़ियां है-इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। सुषुम्ना के अन्दर पुनः तीन भाव नाड़ियां है-चित्रा, वज्रा और ब्रह्मनाड़ी। इन्हीं नाड़ियों के क्रियाकलाप के परिणामस्वरूप तीन ग्रन्थियाँ है- ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्र ग्रन्थि। ये ग्रन्थियाँ भाव ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थियाँ छः चक्रों से सम्बन्धित हैं। ग्रन्थियों को खोलने पर भाव महाभाव में परिवर्तन हो जाता है और महाभाव समाधि में। इन तीनों ग्रन्थियों को खोलने के लिए तीन बन्धों का अभ्यास आवश्यक है। मूलाबन्ध, उड्डियान और जालन्धर बन्धनों में उड्डियान बन्ध का विशेष महत्त्व है। क्योंकि इसका अभ्यास हो जाने से प्राण उसी तरह ऊर्ध्वगमन करते हैं जिस तरह पक्षी पंख फैला कर आकाश में उड़ता रहता है। उड्डियान बन्ध से शेष दोनों बन्ध भी स्वतः लग जाते हैं। अनुभूति के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए राजयोग और लय योग की साधना के लिए हठयोग के ये त्रिबन्ध श्रेष्ठ साधन हैं। योगाचार्यों ने त्रिबन्ध और महामुद्रा के अभ्यास को अन्तर्जगत में प्रवेश करने की कुन्जी माना है। जो इस कुन्जी को पा जा रहा है वह सफल मनोरथ हो जाता है। इन बन्धों के अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों के मल दूर हो जाते हैं और सिद्धप्राणायाम की अवस्था प्राप्त होने पर शरीर की नाड़ियों में पराशक्ति के प्रवाह को सहन करने की सामर्थ्य आ जाती है। परा में **'प' 'र' 'आ'** ये तीन शब्द प्राणों की गति के मार्ग का अर्थ देने वाले है। **'प'** का अर्थ **पाताल** अर्थात **मूलाधारचक्र** और **'र'** का अर्थ **रमण** करना तथा **'आ'** का अर्थ **आकाश** अर्थात सहस्रार का शिखर भाग है। अर्थात मूलाधार से लेकर सहस्रार चक्र तक प्राणों की गति और क्रीड़ा को **परा** कहा जाता है। प्राणों का गमनागमन देखते हुए प्राणों को ही मंत्रमय बनाकर साधक अजपाजप के द्वारा मोक्षद्वार को उद्‌घाटित करने में सफल हो जाता है।

उड्डियान बन्ध का सम्बन्ध नाभिचक्र की गति से है। नाभिचक्र में प्राणों की सूक्ष्म गति

होने पर प्राणाग्नि प्रदीप्त होती है जिससे मन्दाग्नि, मोटापा, गैस आदि दूर हो जाते हैं। प्राणों का नाभिचक्र में संघर्षण होने पर मन में आनन्द का संचार होता है मन और प्राण एकाग्र होकर साधक को परानन्द की अनुभूति करा देते हैं साधक शिव संकल्प तथा शिवरूप के दर्शन करने लगता है। जैसे ही प्राणों में इस प्रकार की गति होने लगे साधक को कण्ठ का संकोचकर उसे तालु मूल में लगा लेना चाहिये। ठोड़ी को कण्ठकूप में लगाकर प्राणों को वहीं रोकदेने पर कण्ठ से ऊपर के चेतन केन्द्रों में स्फुरण प्रारम्भ हो जायेगा। प्राणों की गति ऊर्ध्व केन्द्रों को सजग बनायेगी। जिससे आनन्द, प्रकाश, मूर्च्छा, विचारशून्यता आदि विभिन्न ध्यान की स्थितियाँ अनुभव में आने लगेंगी। हमारे शरीर में शक्ति बीज रूप से उसी प्रकार छिपी है जैसे तिलों में तेल और दूध में घी। उसे प्रकट करने के लिये घर्षण की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार **प्राण** और **अपान** का घर्षण करने से प्राणायाम तथा ध्यान परिकर्मों द्वारा परभात्व तत्व का साक्षात्कार होता है। जो साधक **त्रिबन्धों** का सदा अभ्यास करता रहता है उसकी शक्ति सदा उद्‌बुद्ध और परिपुष्ट बनी रहती है। श्री सद्‌गुरु कृपा से कुण्डलिनी-जागरण के बाद साधक को प्राणक्रिया का अभ्यास करने की सदा आवश्यकता रहती है। जो साधक हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहते हैं उनकी दशा वैसी ही होती है जिस प्रकार एक दीपक की होती है। दीपक जल जाने के बाद उसमें यदि तेल न डालते रहे और वायु से उसकी रक्षा न करें तो थोड़ी ही देर में प्रकाश क्षीण होने लगेगा। प्रारब्ध और संचित कर्मों के वेग से श्रीसद्‌गुरुकृपा प्राप्त होने पर भी अन्तराय अग्नि पर राख की तरह छा जाते हैं। अग्नि के अंगारे से जैसे राख फूंककर अलग करते रहने से अग्नि प्रदीप्त बनी रहती है, उसी प्रकार साधक को प्रतिदिन त्रिबन्धों का आनन्द से हृदय भर अभ्यास करना चाहिये। चित्त वृत्तियों का निरोध बिना प्राण क्रिया के नहीं हो सकता चाहे मंत्रयोग चाहे ध्यानयोग का अभ्यास किया जाय, उनके साथ प्राण क्रिया आवश्यक है। क्योंकि मन प्राण के आधीन है। योगशिखोपनिषद् में चित्त को प्राणों से उसी प्रकार संयुक्त कहा गया है जिस प्रकार पक्षी किसी रस्सी से बंधा हुआ होता है। अतः मन को एकाग्र करने का उपाय प्राणक्रिया है। '

नाना विधैर्विचारैस्तु न बाध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एव हि नान्यथा।।
तर्कजल्पैः शास्त्रजालैर्युक्तिभिर्मंत्र भेषजैः।
न वशो जायते प्राणः सिद्धोपायं विना विधे।।61

यदि कोई विचार द्वारा, मंत्र, औषधि लेकर या तर्कशास्त्र आदि की युक्तियों का आश्रय लेकर मन को वश में करना चाहे तो असम्भव है। उसको वश में करने का उपाय सिद्धयोग अर्थात महायोग है जिसमें प्राणक्रिया ही मुख्य है। हमारे शरीर में प्राणों के कारण ही आयु बल और तेज होता है। उनके ह्रास से रोग और पुरुषार्थ हीनता से दरिद्रता आती है। अतः प्राण क्रिया द्वारा दिव्य ज्योति का जागरण करना मानव मात्र का परम कर्तव्य है। त्रिबन्ध का अभ्यास प्राणजय का आधार है।

जब प्राण नासिका छिद्रों से अन्दर खींचें तो इसे पूरक कहते हैं। पूरक करते समय गुदा मार्ग को कसकर ऊपर की ओर खींचकर मूलाधार में मन को एकाग्र करें। इसी प्रकार श्वास निकालते समय भी यही क्रिया करें। इस प्रकार यह मूलबन्ध की साधना हुई।

मूलबन्ध का बार-बार अभ्यास करते रहना स्वास्थ्य के लिए हितकर है। इसके लिये प्रारम्भ में अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

घोड़ा जब लीद करता है तब अपनी गुदा को बाहर, अन्दर, अन्दर, बाहर जल्दी-जल्दी करता रहता है। इस क्रिया का नाम अश्विनी मुद्रा है। अश्विनी मुद्रा के अभ्यास से मूलबन्ध में शीघ्र सफलता मिलती है। इसके अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है। बवासीर, गैस, आमवात, अजीर्ण रोग नष्ट होते हैं। कुण्डलिनी जागरण का कार्य शीघ्र होता है। मूलबन्ध के परिणाम योगशास्त्रों में विलक्षण बताया गया है इसका अभ्यास करने वाला वृद्ध भी युवा की भांति क्रियाशील बना रह सकता है। इससे प्राण और अपान एक होते हैं तथा मूत्रदोष दूर होते हैं। मलमूत्र अल्पमात्रा में हुआ करते हैं। खाया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है।

अपान प्राणयो रैक्यं क्षयोमूत्रपुरीषयोः।
युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूल बन्धनात्॥

प्राणवायु के ऊर्ध्वाकर्षण से शरीर की जठराग्नि प्रदीप्त होती है जठराग्नि युक्त अन्न का सम्यक् परिपाक कर रस और धातुओं का निर्माण कर शरीर और मन को स्वस्थ एवं प्रसन्न करके शक्तिमान् बनाती है। अतः सिद्धासन में बैठकर मूलबन्ध का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास के पूर्व अत्यन्त श्रद्धाभाव से श्री गुरुदेव, सिद्धपुरुषों तथा इष्ट का वन्दन करें।

मूलबन्ध के साथ-साथ कुम्भक के अन्त में और रेचक के पहले उड्डियान बन्ध का अभ्यास करना चाहिये। इसके द्वारा प्राण अपान मिलकर सुषुम्ना में हंस रूप प्राण उड़ने लगते हैं। इसीलिए इसका नाम आचार्यों ने उड्डियान बन्ध रखा है। इसका छः महीने तक लगातार अभ्यास करने वाला मृत्यु को भी जीत सकता है, वृद्ध भी नौजवान की तरह क्रियाशील हो जाता है। नाभि के ऊपर और नीचे प्राणों का आकुन्चन करने से उड्डियान बन्ध जल्दी सिद्ध होता है। इससे नाभि के चारों ओर प्रस्तुत नाड़ियाँ होती है, जिससे यकृत प्लीहा आमाशय पक्वाशय तथा रक्त के विकार नहीं होते। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। निद्रा और आलस्य दूर भाग जाते हैं। इसके अभ्यास के लिए वज्रासन में बैठकर अग्निसार क्रिया करना चाहिए। नाभि को पीठ की ओर जल्दी-जल्दी अन्दर बाहर करना चाहिये। कुम्भक के पूर्व पूरक के अन्त में कण्ठ का संकोचन ठोड़ी को कण्ठ में लगाकर वायु को हृदय में धारणा द्वारा रोकने से जालन्धर बन्ध होता है। इससे प्राण ब्रह्मनाड़ी में संचार करता है तथा कफरोग नष्ट हो जाते हैं। अमृत का पान करने की योग्यता विकसित होती है। इन तीनों बन्धों को संपुट योग के नाम से शास्त्रों में कहा गया है।

महाप्रलय में जीव न विचरता है और न ईश्वर में मिल जाता है। रात्रि आने पर जैसे सब सो जाते हैं, वैसे ही सारे जीव अचेत अवस्था में चले जाते हैं।

किमस्ति योगः

रचियता - द्वारका प्रसाद शर्मा

306-ए (अभिषेक) 'प्रिया-निकुञ्ज, एल्डिको-उदयन-दो उतरेटिया, लखनऊ

वैराग्यं समुपाश्रित्य, वशीकारामिधं त्विदम्।
तत्परं पुरुषख्याति रौदासीन्यं प्रजायते।।1।।
सम्प्रज्ञाता सम्प्रज्ञातौ, समाधिर्द्विविधो मतः।
सम्प्रज्ञातुस्तु सज्ञानं, निर्ज्ञानं तु द्वितीयकः।।2।।
सम्प्रज्ञात समाधौ च, सौपानास्तु चतुष्टयः।
वितर्कात् प्रथमो ज्ञेयः, विचारात्तु द्वितीयकः।।3।।
आनन्दाभिधस्त्रितयः, अस्मिताऽस्ति चतुर्थकः।
सम्प्रज्ञात समाधेस्तु, चतुः सोपानकाः स्मृताः।।4।।
संप्रज्ञाते समाधौ हि, यतो ज्ञातं भवेत्कृतम्।
अतः सर्वं तु ज्ञातव्यं, स्वयमेवानुभूयते।।5।।
मनः संस्कारितं यस्मिन्, तस्मिन्नेव निलीयते।
तज्ज्ञानं स्वावबोधाय, कर्तव्यं तु प्रयत्नतः।।6।।
योगिना योगमार्गेतु, ये ये साधनतां गताः।
पंचभूतान्यमूनि वै, तन्मात्राश्चापि भूतजाः।।7।।
प्रत्यक्षं ध्यान योगेन, द्रष्टव्यास्तु हृदन्तरे।
नैतल्लक्ष्यं मामकीनं, त्याज्यं स्यात्तदनेतरमम्।।8।।
योगिनो लक्ष्यमेकन्तु, ऐक्यं जीवात्मनोश्च वै।
द्वयं भिन्नं पृथक् चापि, पश्येत् खलु स दुर्मतिः।।9।।

यं यं तर्कयते तावत्, प्रत्यक्षं गम्यते यदा।
तदा नैतन्न मे लक्ष्यं, चिन्त्यते योगिना तदा।।10।।
तेषु तेषु विनिर्वृत्य, ध्यानमग्रेषु स्थापयेत्।
कुर्वन् हशिददं सर्वं, नश्वरं च विकल्पयन्।।11।।
ततो विचारतो योगी, ध्यायेत् संकल्पयेच्च तत्।
नैवं नैवं न मे लक्ष्यं, विचारं दृढतां न येत्।।12।।
विचारेण मनुष्यस्य, भावना परिपुष्यते।
यादृशी भावना यस्य, स ना भवति तादृशः।।13।।
चेन्मन्येयं सुखी दुःखी, भविष्ये तादृक्षस्त्वहम्।
मनसस्तु विकारोऽयं, मनसा शुभभावहेतुद्।।14।।
यतो मन्त्रस्य जापेन, ध्यानादिष्टस्य योगिनः।
शुभं सर्वं भूति युक्तं, ध्यानादेव प्रजायते।।15।।
विचारानन्तरं योगी, दृश्यं स्वर्गतलेतुयत्।
सर्वं रम्यं, सुखाकीर्णं, ध्यानस्थः पश्यति स्वरूप।।16।।
आनन्देनापूरितं सर्वं, दृश्यजातं मनोहरम्।
मज्जनमनुभूत्यैव, कुर्याद् योगी सुधीस्तु यः।।17।।
तस्मिन्नेव निमग्नश्चेत्, च्युतिर्योगाब्धि जायते।
अतएव सावधानेन, मनसा त्यक्तैषणो भवेत्।।18।।
एतदनन्तरं योगी, अस्मितानुगतो भवेत्।
यस्मिन्नस्म्यहमेवास्मि, जानात्येत हि केवलम्।।19।।
चतुष्पादेषु विस्तीर्णं, संप्रज्ञात समाधिना।
जानन्नेह च ध्याने स्वे, योगे दक्षः प्रजायते।।20।।

श्री गुरुदेव की सर्वज्ञता

केशव देव उपाध्याय (वाराणसी)

अनाथ नाथ की शरण में दीक्षित हमारे आदरणीय गुरुभाइ-बहन, आराध्यदेव श्री सद्गुरु जी महाराज की सर्वज्ञता से भली प्रकार परिचित है। श्री प्रभु जी के सानिध्य में कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाया करते थे कि उनसे श्री प्रभु की सर्वज्ञता के साथ ही स्पष्ट चेतावनी भी मिला करती थी। योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाई से सम्बन्ध रखने वाले गुरु भाई-बहन, श्री महेन्द्र नारायण सिंह ग्राम-बरैनी जिला मिर्जापुर के नाम से अवश्य ही अवगत होंगे। मेरी-निजानुभूतियाँ नामक योग परक पुस्तक, जो सवाई धाम द्वारा प्रकाशित करायी गयी है, उसमें इन्हीं के ध्यानानुभवों का वर्णन किया गया है। इन्हीं के लघुभ्राता श्री रविन्द्र नारायण सिंह जी किसी सरकारी विभाग में कार्यरत है तथा श्री प्रभुजी के विशेष कृपा पात्र शिष्य हैं, के साथ घटित एक प्रसंग ही इस कथानक का मुख्य विषय है। प्रसंग उस समय का है जब श्री प्रभु जी का योग प्रचार कार्यक्रम वाराणसी जिले में आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई श्री ऋषिराम शर्मा जी, श्री विष्णुदेव शर्मा एवं श्री रामशरण सिंह के सहयोग से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में, उस समय के विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्री के. एन. लाल के विशेष सहयोग से सम्पादित हो रहा था। आराध्यदेव जी के योग प्रवचन का विषय, **"श्री सिद्ध कृपा कब और कैसे"** श्री प्रभु जी ने यह विषय अनेकानेक उदहारण देकर योग जिज्ञासुओं को समझाया। आराध्यदेव जी ने इसी तारतम्य में स्पष्ट रूप से यह भी बतलाया कि एक पल की भी की गयी **'सिद्ध सेवा'** व्यर्थ नहीं जाती, वह अवश्य ही फलदायी होती है। योगिराज, सिद्धगण एवं परात्पर ईश्वर तत्वदर्शी है जबकि प्राणी मात्र का मन प्रत्यक्षदर्शी है। संसार में कार्य करते रहने से उसे प्रत्यक्ष लाभ की प्राप्ति ही अभीष्ट है। यदि किसी प्राणी ने पूरे दिन कार्य किया तो सायंकाल उसे मजदूरी का हक मिलना ही चाहिये, यह मन का स्वभाव बन गया है। वाराणसी के इस कार्यक्रम का लाभ उठाने आस-पास के शहर एवं देहात के हमारे गुरुभाई-बहन एवं योग-जिज्ञासु वाराणसी रुककर इस पूरे वातावरण में आनन्दित हो रहे थे। आदरणीय भाई श्री रविन्द्र नारायण जी की साधना श्री प्रभु जी की कृपा से उस समय भी अच्छी चल रही थी। परन्तु आखिर मन ही तो ठहरा, सोचा चट-पट सिद्ध-सेवा करके निहाल हो जाओं। इससे अच्छा सुअवसर कब मिलेगा। स्वयं सिद्धों के सरताज गुरुदेव योग प्रचार हेतु सप्ताह भर विराजमान रहेंगे, प्रोग्राम के बाद एकान्त भी बहुत अधिक समय तक मिलता है, तो क्यों न इसका पूरा-पूरा फायदा उठाया जाय। यह संकल्प दृढ़ करके अगले दिन से ही उन्होंने इसे आरम्भ कर दिया। भाई जी प्रातः काल करीब चार बजे के लगभग श्री गुरुनिवास के पास पहुँच गये, दरवाजे के पल्ले आपस में सटे हुये थे परन्तु सिटकिनी बन्द नहीं थी। धीरे से स्पर्श किया तो दरवाजा खुल गया। कमरे में प्रवेशोपरान्त इन्होंने देखा कि आराध्यदेव जी जगे हुये हैं परन्तु आँखें खोलकर चित्त लेटे हुये हैं। अतः इन्होंने

प्रणाम किया, श्री मुख ने आशीर्वाद दिया एवं यह पैर दबाना आरम्भ किये। बारी-बारी से इन्होंने दोनों पैर दबाया, फिर श्री प्रभु जी दायें करवट हुए तो इन्होंने बाया हाथ दबाया एवं बायें करवट हुए तो दाहिना हाथ दबाया। कौतूहलवश श्री प्रभु जी चित्त लेटकर एवं बायीं तरफ होकर उन्हें भरपूर सेवा का मौका देते रहे एवं इनका प्रत्यक्षदर्शी मन अपनी चालाकी पर हर्षित होता रहा। सेवा का यह अनुपम कार्यक्रम निर्बाध रूप से भाई जी के द्वारा कार्यक्रम के अन्तिम दिन से एक दिन पूर्व तक किया गया। कार्यक्रम के अन्तिम दिन, जिस दिन आराध्य देव को अगले कार्यक्रम हेतु अपराह्न अन्यत्र जाना था, वे नित्य की भाँति लगभग चार बजे प्रातः कमरे में पहुँच कर प्रणाम किये आराध्यदेव जी ने आशीर्वाद दिया एवं उठकर बैठ गये। फिर मुस्कराते हुए बोले, आओ लल्ला! आज मैं तुम्हें शरीर दबाने की विधि बतला दूँ। रहस्य यह था कि इस रात्रि भर भाई जी यह सोच रहे थे कि आज (कल प्रातः) सिद्ध सेवा का सातवाँ दिन है, आज यह सिद्ध हमारे गुरुदेव योग प्रचारार्थ अन्यत्र चले जायेंगे, अतः आज हमारी इस सिद्ध सेवा का फल अवश्य ही मिल जावेगा। अतः जब श्री प्रभु जी ने उन्हें शरीर दबाने की विधि बतलाने को अपने पास बुलाया तो इन्होंने समझा कि लगता है अब कुछ अनहोनी होने वाली है। अतः श्री रविन्द्र नारायण श्री हाथ जोड़े विनीत भाव से गुरुदेव के पास पहुँच गये। श्री प्रभु जी ने उनका दोनो हाथ पकड़ कर कुछ क्षण विनोद किया एवं फिर उनका दाहिना हाथ अपने कंधे पर रख दिया एवं चार-पाँच बार नीचे से ऊपर तक अच्छी प्रकार दबाया, फिर उनका बाँया हाथ अपने दूसरे कंधे पर रखा एवं उसे नीचे-ऊपर दबाया। इसके बाद कहा, ऐसे दबाया जाता है। तदन्तर अपनी मधुर मुस्कान से उन्हें निहारते हुये कहा, और रही सिद्ध सेवा की बात, सो लेनी-देनी बराबर। गुरुदेव भगवान के मुखारविन्दु से यह वाक्य सुनकर "लेनी देनी बराबर।" वे अवाक् से हो गये। इन्होंने फिर श्री चरणों में प्रणाम किया एवं बैठकर सोचने लगे हमने हाथ पैर की सेवा की थी, वह फल की इच्छा प्रबल थी अतः आराध्यदेव जी ने हमारा हाथ दबाकर हमें चेतावनी देते हुये समझाया है। इनके मन ने ही उन्हें गुरुवाणी का स्मरण दिलाया, "**सहजहि पके सो मिठाहोय**" अर्थात् साधक को संतोष द्वारा अपनी साधना करती रहनी चाहिये, समय पर फल अवश्य-अवश्य मिलेगा।

श्री प्रभु जी के योग प्रचार कार्यक्रम से ही सम्बन्धित एक दूसरी घटना का बार-बार स्मरण हो रहा है जिसे शान्तः सुखाय लिख रहा हूँ। यह प्रसंग हरियाणा प्रान्त के प्रचार कार्यक्रम का है। आराध्यदेव जी का यौगिक प्रचार कार्यक्रम खूब जोरों पर था। श्री प्रभु जी ने अपने विगत वर्ष के कार्यक्रम में इसी पण्डाल में यह उद्घोष किया था कि यदि कोई भी साधक पंचाक्षरी मंत्र का इतने लाख जप कर ले, तो उसे भगवान शंकर का साक्षात्कार स्थूल या सूक्ष्म रूप से अवश्य-अवश्य प्राप्त हो जावेगा। इस साल के यौगिक प्रचार कार्यक्रम के दूसरे दिन प्रातःकाल जब श्री प्रभुजी गीता पाठ कराकर उसकी व्याख्या कर चुके एवं यह उपदेश किये कि त्रिजग पावन, कालचक्र, युग-चक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की कोई भी बात असत्य नहीं हो सकती। उनके मुखारविन्दु से यह

वाक्य निकलना था कि एक अधेड़ उम्र का आदमी हाथ जोड़े उस श्रोता समुदाय में ही खड़ा हो गया एवं प्रार्थना किया कि महाराज, आप भी तो असत्य भाषण नहीं करते। श्री प्रभु जी ने कहा, हाँ लल्ला, मैं असत्य भाषण नहीं करता, परन्तु तुम्हारे यह पूछने का अभिप्राय क्या है? उसने अपने पास से एक मोटी कापी निकाली एवं फिर कहना प्रारम्भ किया, आप ने पिछले साल के प्रवचन में यह आश्वासन दिया था कि यदि कोई भी साधक इतने लाख पंचाक्षरी मंत्र का जप कर ले तो उसे भगवान शंकर का सूक्ष्म या स्थूल रूप से साक्षात्कार हो जायेगा मेरी यह कापी इस बात का प्रमाण है कि आप द्वारा निर्धारित लक्ष्य का हमने पंचाक्षरी जप किया परन्तु हमें कोई अनुभूति नहीं हुयी। श्री मुख ने आदेशित किया, लल्ला! सुनाओ, कब कितनी संख्या में जप किया। आज्ञानुसार उसने सुनाना आरम्भ किया। पहले दिन उठकर प्रातः इतने बार, शौच जाते समय इतने बार, आते समय इतने बार, दन्तधावन करते समय इतने बार, स्नान करते समय इतने बार, गन्ना छिलते समय, इतने बार आदि-आदि। इस प्रकार रात्रि को सोते समय तक इतने हजार बार। उसने अपनी एक दिन की दिनचर्या किये गये मंत्र जापों की संख्या का वर्णन जब कर लिया तो श्री प्रभु जी ने कहा, लल्ला! अब शान्त हो जाओ, एवं मेरी बात ध्यान से सुनो। प्रत्येक कार्य करने का कुछ नियम है। पूजा, मंत्र-जप एवं साधना करने का नियम है :-

सतुदीर्घकालेनैरन्तर्यसत्कारासेवितोदृढभूमि

अर्थात् साधक को लम्बे समय तक लगातार, दृढ़ निश्चय का व्रत लेकर तथा श्रद्धा के साथ अपना मंत्र-जप करना चाहिये। अपनी दिनचर्या इस प्रकार बना लो कि प्रातःकाल पौने चार बजे अपने बिस्तर छोड़ दो, पानी पीकर शौच जाओ, हाथ अच्छी प्रकार मिट्टी से साफ करके बबूल की दातुन करो, ताजे पानी से स्नान करो, खुरदरी या गाँधी आश्रम की तौलिया से खूब रगड़-रगड़ कर शरीर पोंछो, फिर कपड़े पहन कर थोड़ा बहुत नैतिक व्यायाम करो उसके बाद कम से कम दो घंटे मंत्र जप करो। इसके पश्चात् एक घंटे तक मंत्र के अधिष्ठता देव का स्मरण करो या मुक्तिदाता ग्रन्थों का अध्ययन करो। यदि समय हो तो दो घंटे फिर मंत्र-जप करो एवं उसके बाद अपने संसारिक कार्य करो। सायंकाल संसारिक कार्य से खाली होने पर मंत्र-जप एवं स्मरण का यह क्रम फिर से आरम्भ करो। इस पंक्षाचरी मंत्र का स्वाध्याय तुम इस प्रकार आरम्भ करो, यदि ऐसा करने का प्रयत्न करोगे तो श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं तुम्हारा अभिप्राय सिद्ध होगा। इस प्रकार एक जिज्ञासु को श्री प्रभु जी ने निमित्त बनाकर पूरे साधक समुदाय को उपदेशित करते हुए, आशीर्वादात्मक मुद्रा में प्रवचन की इस बेला का समापन किया। ◆◆◆

मोक्ष के प्रति भी अनासक्ति यह फल त्याग का अन्तिम और सर्वोत्तम अर्थ है। —विनोवा

योग निरेपक्ष भक्ति

पं राजेन्द्र प्रसाद पाठक

निरपेक्ष -सिद्ध-भक्त को अपने कहे जाने वाले शरीर की भी अपेक्षा नहीं होती, इसलिये वह सर्वथा निरपेक्ष होता है। उसको तो इसकी भी अपेक्षा नहीं होती कि भगवान दर्शन दें। भगवान दर्शन देवें तो भी आनन्द, न देवें तो भी आनन्द। वह तो सदा भगवान की प्रसन्नता और कृपा को देखकर सर्वदा मस्त रहता है। ऐसे निरपेक्ष भक्त के पीछे भगवान भी घूमा करते हैं। श्री भगवान स्वयं कहते हैं कि "जो निरपेक्ष अर्थात् किसी की अपेक्षा न रखने वाला, निरन्तर मेरा मनन करने वाला, शान्त, द्वेषरहित और सबके प्रति समान दृष्टि रखने वाला है, उस महात्मा के पीछे-पीछे मैं सदा यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसकी चरण रज मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।"

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रज्याम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।

(श्रीमद्भागवत् महापुराण 11/14/16)

किसी वस्तु की इच्छा को लेकर भगवान की भक्ति करने वाला मनुष्य वस्तुतः उस इच्छित वस्तु का ही भक्त होता है क्योंकि उसका लक्ष्य है इच्छित वस्तु। किन्तु श्री प्रभु की यह उदारता है कि उसको भी अपना भक्त मानते हैं। उसको तो एक मात्र भरोसा भगवान का है और उन्हीं परम कृपालु के भरोसे भजन करता है। अतः वे भक्त ध्रुव की तरह उसको सर्वथा निःस्पृह बना देते हैं। शरीर में, मैं और मेरापन न रहने से भक्त का शरीर अत्यन्त पवित्र होता है अन्तःकरण में राग-द्वेष, हर्ष शोक, काम-क्रोध आदि विकारों के न रहने से उसका हृदय अत्यन्त पवित्र होता है ऐसे भक्त के दर्शन, स्पर्श वार्तालाप और चिन्तन से सभी लोग तो पवित्र होते हैं बल्कि वह तीर्थों को भी पवित्र करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण तीर्थों को अपने चरण-स्पर्श मात्र से तीर्थत्व प्रदान करते हुये, अहंकार का सर्वथा त्यागकर अपने हृदय में विराजित भगवान के प्रभाव से तीर्थ को भी महातीर्थ बनाते हुये विचरण करते हैं, ऐसे श्री प्रभु के भक्त, निरपेक्ष भक्त ही नहीं बल्कि उनको अत्यन्त प्रिय होते हैं—अतः कहा गया

"तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानिस्वान्तः स्थेन गदाभृता।।"

व्यष्टि एवं समष्टि भावनाओं से परे योगियों के कर्म देखें। परम कारुणिक श्री प्रभु जी ने महाराज भागीरथ को अपने पुरुषों के मोक्षार्थ पृथ्वी पर गंङ्गा जी को लाने के लिये आदेश दिया था। ऐसा वर्णन पौराणिक ग्रन्थों में मिलता है। महाराज भगीरथ घोर तपस्या के पश्चात् परम भवानी गंङ्गा जी को प्रसन्न कर उनसे वरदान पाने की श्रद्धा प्राप्त किये, परन्तु गंङ्गा जी ने अवतरण से पहले महाराज जी से बड़ी गूढ़ परामर्श किया और कहा—हे महाराज भगीरथ! मैं मर्त्यलोक में नहीं जाऊँगी क्योंकि सांसारिक समस्त जीव अपने पाप कर्मों के क्षय हेतु स्नानकर हमें अपवित्र कर देंगे। इस बात को सुनकर योगयुक्त निरपेक्ष भक्तस्वरूप भगीरथ, गंगा जी से कहते हैं कि—"माता! जिन्होंने लोक-परलोक की समस्त कामनाओं का त्याग कर दिया है, जो संसार से उपरत होकर अपने-आप में शान्त हैं, जो

ब्रह्मनिष्ठ और लोकों को पवित्र करने वाले परोपकारी साधु पुरुष हैं वे अपने अङ्गस्पर्श से तुम्हारे (पापियों के अङ्गस्पर्श से आये) समस्त पापों को नष्ट कर देंगे, क्योंकि उनके हृदय में पापों को नाश करने वाले भगवान सर्वदा निवास करते हैं।"

"साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण 9/9/6)

इसका कारण है कि निरपेक्ष भक्त सांसारिक दक्षता (चतुराई) से बहुत दूर होता है क्योंकि व्यवहार (संसार) में अधिक दक्ष (चतुर) होना कलंक ही है। व्यक्ति (जीव) जितना ही व्यवहार में दक्ष होना शुरु करता है उतना ही उसके अन्तःकरण में जड़ पदार्थों का आदर बढ़ता है जो मनुष्य (जीव) के पतन का कारण बनता है। निरपेक्ष भक्त के लिये व्यवहारिक दक्षता को परमार्थिक स्थिति कसौटी मानना स्वयं (ईश्वर) के अपमान-सा लगता है। जिसके प्रति श्री भगवान स्वयं कहते हैं कि-

"विवेकियों के विवेक और चतुरों की चतुराई की पराकाष्ठा इसी में है कि वे विनाशी और असत्य शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य तत्व को प्राप्त कर ले।"

"एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्।।

(श्री मद्भागवत महापुराण 11/29/22)

निरपेक्ष भक्त, योगयुक्त योगी की तरह सिद्धयोगी है क्योंकि योग युक्त योगी तथा निरपेक्ष भक्त दोनों ही शुभ कर्मो से तो राग नहीं करते। उनके द्वारा स्वाभाविक शास्त्रविहित शुभ कर्मो का आचरण और अशुभ कर्मो का त्याग होता है। **राग द्वेष का सर्वथा त्याग करने वाला ही योगी होता है।** मनुष्य (जीव) को कर्म नहीं बाँधते बल्कि कर्मों में उसके द्वारा किये गये राग-द्वेष ही बाँधते हैं क्योंकि वह शुभ (अनुकूल), अशुभ (प्रतिकूल) परिस्थितियों के सामने गिड़गिड़ाने लगता है परन्तु योगी तथा निरपेक्ष भक्त इन परिस्थितियों का दास नहीं होता। उसकी चित्त की समस्त वृत्तियाँ निरोध में समाहित रहती हुई द्रष्टा के स्वरूप में स्थित हो जाती है। इसलिये महर्षि पतंजलि ने इस बात को सूत्र में बाँध दिया कि-

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (1/2) तथा
"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् (1/3)

भगवान में उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि के जो सामर्थ्य हैं, वह योगी में तो नहीं होते किन्तु संसार में किसी भी अनुकूल (शुभ) प्रतिकूल (अशुभ) कर्मों पर विजय प्राप्त करके रागरहित हो जाना योगी का सामर्थ्य व्यक्तित्व है। जिसे गीता भी संकेत करता है कि-कर्मयोगी आसक्ति का त्याग करके केवल (ममतारहित) इन्द्रियाँ शरीर मन बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही कर्म करते हैं।

"कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गंत्यक्त्वात्मशुद्धये।।

(श्रीमद्भगवगीता 5/11)

शास्त्रीय विवेचन में, योग शब्द तीन प्रकार की क्रियाओं से प्राप्त होता है, जो कि संकेत करता है- **'युजिर योगे'** क्रिया-समरूप परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्धः 'युज समाधौ' क्रिया से बना 'योग' शब्द का अर्थ है-चित्त की स्थिरता अर्थात् समाधी में स्थिति तथा **'युंज संयमने'** क्रिया से प्राप्त 'योग' शब्द का अर्थ है-सामर्थ्य

या प्रभाव। अतः समस्त संसार के कार्यों की व्यापकता के मूल में भी प्रभु ही है। श्री प्रभु कृपा से ही योग युक्त योगी एवं निरपेक्ष भक्त के अन्दर सामर्थ्य आने पर समता और स्थिरता स्वतः ही आ जाती है तथा वह अपने को श्री प्रभु का मानकर रागरहित हो उन्हें ही समर्पित हो जाता है। तथा संकेत करता है कि—**"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।" सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।** (2/48, श्रीगीता)

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया।
यत्र चैवात्मानात्मनं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।

(श्रीगीता 6/20)

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो महात्मा भूतभावना।।

(श्री गीता 9/15)

अतः **'योग'** और **'निरपेक्ष भक्ति'** में अन्तर्मन की समानता है। दोनों ही में—शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता तथा समझ के अनुसार पुराने संस्कारों के कारण बने **राग** को मिटाने तथा कुछ भी न चाहने से नये राग पैदा न होने की स्वाभाविक वृत्ति के कारण मन में तीव्र वैराग्य आ जाता है। ऐसा होने से मन की एकाग्रता में जीवात्मा अपने स्वयं परमात्मा का बोध कर परम शान्ति पाता है—ऐसे हैं हमारे योगियों के—**'योग एवं निरपेक्ष भक्ति'**।

—❁—

जागरूकता का अर्थ है अज्ञान का अभाव। व्यक्ति का यह समझना कि वह "यह है" अथवा "वह है" उसकी भूल है। केवल "मैं अस्तित्व हूँ" न कि "मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ" "मैं" आत्मा है। मैं यह हूँ अथवा, वह ही अहंकार है। अस्तित्व तुम्हारा स्वरूप है।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरुदेव के संस्मरण

(रमाकान्त उपाध्याय ऊर्फ कन्हैया, वाराणसी)

प्रसंग किस ईस्वी सन् का है इसका ठीक-ठीक स्मरण तो नहीं है परन्तु आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के माघ मेला कैम्प शिविर से संबंधित है। अखिल ब्रह्माण्ड नायक परमयोग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज की विधिवत् आरती पूजा करके श्री प्रभु जी ने श्री गीता पाठ कराया तथा इसके पश्चात् शिष्यों में नाश्ता वितरित किया। आगन्तुक योग जिज्ञासुओं का शंका समाधान किया तथा इसके पश्चात अपनी पूर्ण कुटी के बाहर लगे आसन पर धूप में विराजमान हो गये। सामने जमीन पर पुआल और फर्श पड़ा था, जिस पर हमारे गुरु भाई-बहन बैठे थे। श्री प्रभु जी ने अपने अनन्यनिष्ठ शिष्य हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री बृजमोहन जी को पत्रों का जवाब लिखने का आदेश दिया। श्री प्रभु जी ने कुछ पत्र अपने पास रख लिये एवं शेष पत्रों में से कुछ के जवाब बताये और बचे पत्रों को यह कहकर दे दिया कि लल्ला! इन पत्रों के उत्तर तुम स्वयं लिख लेना। फर्श पर एक बुद्धिमान और तार्किक पत्रकार भी आकर बैठा था, जो योग जिज्ञासु बनकर आया था। वह भी प्रभु जी के उपरोक्त क्रिया कलापों को बड़े गौर से देख रहा था। श्री प्रभुजीने भाई बृज मोहन जी को एक पत्र के उत्तर में जब यह बताया कि प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर सूत्र नेति किया करो, नाक से दूध पिया करो एवं प्रातः पांच बजे से सात बजे तक अपने गुरुमंत्र का जप किया करो। यदि तुम ऐसा करोगे तो अवश्य-अवश्य उस रोग से मुक्त हो जाओगे तथा तुम्हारे सभी कार्य बनते चले जायेंगे। श्री गुरुदेव भगवान के उनके शिष्यों द्वारा लिखे गये एक पत्र के उत्तर में यह सुनकर उपस्थित पत्रकार ने खड़े होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि महाराज जी! क्या आपके नेति क्रिया एवं जीवन तत्व साधन से कोई रोगी निरोग भी हुआ है? श्री प्रभु जी पत्रकार के इस प्रश्न का उत्तर देते, इसके पूर्व ही आदरणीय भाई श्री बृज मोहन जी के भतीजे श्री ऋषिराज वशिष्ठ जी जो उच्च कोटि के चिकित्सक एवं ध्यान साधक हैं ने बड़ी नम्रता से उस पत्रकार को समझाया कि पत्रों का उत्तर लिखने वाले ये हमारे चाचा जी हैं। इनको पी. जी. आई. एवं कई मेडिकल कालेज के चिकित्सकों ने लाइलाज घोषित कर दिया था एवं इनका यह असाध्य रोग मृत्युपर्यन्त बना रहता। परन्तु इन्हीं गुरुदेव भगवान द्वारा निर्देशित यौगिक क्रियाओं एवं आसनों को करके आप के सामने ये पूर्ण स्वस्थ रूप में बैठे हैं। श्री ऋषिराज जी का यह उत्तर सुनकर श्री प्रभु जी थोड़ा मुस्कराये और पत्रकार को इंगित करके श्रीमुख से बोले हो ल्ला! बात बिल्कुल-बिल्कुल सत्य है यदि नियमानुसार जीवन तत्व साधन एवं अन्य यौगिक क्रियाएं की जायें तो असाध्य से असाध्य रोग भी बिना किसी औषधि के बिल्कुल-बिल्कुल ठीक हो जायेगा।

पत्रकार ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि महाराज जी! आपने हजारों योग जिज्ञासुओं को योग-दीक्षा दी है, क्या आपके किसी शिष्य की

कुंडलिनी भी जागृत है। पत्रकार के पहले प्रश्न के उत्तर में तो गुरुदेव ने ऐसा भाव बनाया था जैसे वो कुछ सोच रहे हों परन्तु दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए वे पहले से तैयार हों, उन्होंने तत्काल जवाब दिया लल्ला! मैंने जिसको भी दीक्षा दी है श्री प्रभु जी (दादा गुरुदेव) की कृपा से हमारे उन सभी बच्चों की कुंडलिनी जागृत है। पत्रकार आराध्य देव जी के मुखारविन्दु से यह उत्तर सुनकर आश्चर्यचकित होता रहा। उसने योग से संबंधित अनेक प्रश्न पूछकर अपनी शंकाओं का समाधान किया। धूप कुछ तेज हो गयी थी अतः श्री प्रभु जी ने भाई बृज मोहन जी को आदेश दिया कि चलो लल्ला! अब झोपड़ी में चलते हैं एवं वहीं पत्रों का उत्तर लिख जायेगा। गुरुदेव भगवान ने सामने फर्श पर बैठे हुए बच्चों को आदेशित किया कि तुम लोग भी अब अपनी-अपनी झोपड़ी में जाओ, धूप तेज हो गयी है। तत्पश्चात् श्री प्रभु जी झोपड़ी में प्रवेश कर अपने आसन पर बैठ गये। उनके सम्मुख बैठकर भाई बृज मोहन जी पत्रों का उत्तर लिखना शुरु किये।

जब से श्री प्रभु जी पत्रकार के दूसरे प्रश्न का उत्तर दिये थे कि श्री प्रभु जी (दादा गुरुदेव) की कृपा से हमारे प्रत्येक दीक्षित शिष्य की कुंडलिनी जागृत है, तभी से भाई श्री बृज मोहन जी की बुद्धि में यह प्रश्न बार-बार उठ रहा था कि गुरुदेव भगवान असत्य बोलते नहीं एवं यदि सत्य बोलते हैं तो हमें कुंडलिनी जागरण का आभास क्यों नहीं होता। इसी बीच एक दम्पत्ति के सांसारिक झगड़ों से संबंधित कोई ऐसा पत्र आया जिसे पढ़कर भाई जी को हंसी आ गयी, इस पर श्री प्रभु जी ने पूछा कि क्यों लल्ला! क्यों हंस रहे हो? भाई जी ने जब श्री प्रभु जी को पत्र के तथ्य से अवगत कराया तो गुरुदेव भगवान भी ठहाका मार कर हँसने लगे। समय एवं परिस्थिति को अनुकूल देखकर भाई जी ने नम्रता पूर्वक प्रार्थना किया कि प्रभु जी! आप ने तो कहा है कि मेरे सभी शिष्यों की कुंडलिनी जागृत है, मेरी तो कुंडलिनी नहीं जागृत है। श्री प्रभु जी ने उनकी इस प्रार्थना को सुनकर अपने मुखारविन्दु से सही तथ्य का निरुपण करते हुए कहा कि-लल्ला! यदि तुम्हें तुम्हारी कुंडलिनी जागरण का आभास हो जाय, तो इन पत्रों का जवाब क्या तुम्हारे ताऊ जी (चाचा जी) लिखेंगे क्योंकि इस के बाद तो तुम जंगल की तरफ भागने लगोगे।' आराध्य देव जी की बातों का रहस्य जानकर भाई जी ने श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किया एवं पुनः पत्रों का उत्तर लिखने लगे।

—❁—

समाधि से तात्पर्य देहात्म बुद्धि से परे होना है। देह का आत्मा से तादात्म्य न होना पूर्व निश्चित है।

श्रीसद्गुरुदेव का अभिनन्दन पर्व

सत्य प्रकाश शर्मा 1046 रेवाड़पुरा हाथरस (महामाया नगर)

आषाढ़ पूर्णिमा गुरु पूर्णिमा व्यास पूर्णिमा का मंगलमय दिन है। इस दिन जीवन को अपने ज्ञान से प्रकाशित करने वाले सद् गुरुदेव का पूजन, अर्चन, आराधन, अभिनंदन, वंदन किया जाता है। जिन्होंने अपने समर्पणकारी जीवन दर्शन से सद् गुरु भक्ति का मंगलमय संदेश प्रदान किया है और जिनकी आकांक्षा, अपेक्षा होती है कि उनके शिष्य और प्रेमी भक्तों का जीवन भगवान के नाम रूप, चिन्तन से परिपूर्ण हो जाय। जो मनुष्य का एक सुन्दर श्रृंगार होता है जो अपने इस श्रृंगार से दूर है उसको इस ओर प्रेरित करने वाले व्यक्तित्व का ही नाम सद् गुरुदेव है जिनका उद्देश्य होता है अपने सम्पर्क में आने वालों को विद्या से विभूषित कर उनका आत्मकल्याण करना। जिससे वे अपने प्रकाश से मानव जीवन और मानव समाज को आनन्दमयी अमृत समाज का रूप प्रदान कर सकें और सत गुरुदेव संदेश से मानव का लोक मंगल कल्याण होता रहे।

धर्मग्रन्थों में सद्गुरु महिमा को भगवान की महिमा की मान्यता प्रदान की गयी है। प्रत्येक गुरुदेव की अपेक्षा होती है कि उनका शिष्य उनके आत्मज्ञान प्रकाश को अपने समाज के सामने रखे और सत्संग और प्रभु चर्चा से दूर स्थल को मंदिर बनाये। जब प्रभु चर्चा सत्संग से भाव मंदिरों का निर्माण होगा तो सम्पूर्ण समाज प्रकाशमान हो जायेगा और इससे सत गुरुदेव की आकांक्षा अन्धकार से प्रकाश की ओर प्रशस्त होकर पूर्ण होगी। उनकी कामना होती है उनके सम्पर्क सत्संग में आने वाला हर व्यक्ति अपना आत्मदीप बनें।

सत गुरुदेव अपने सत्संग ज्ञान से मनुष्यों को ईश्वर अंश जीव अविनाशी के रूप में उसके परमात्मा के अमृतस्य पुत्र के रूप का ज्ञान कराते हैं जिससे मनुष्य अपने मानव धर्म का ज्ञान रूपी संदेश ग्रहण कर सके और एक दूसरे के साथ प्रेम प्रीति पूर्वक रह सकें और एक-दूसरे का सम्मान करता रहे और परमपिता परमात्मा की शक्ति का स्मरण करता रहे। उसका यह प्रयास ही **सम्भवामि युगे-युगे** तक धर्म संस्थापनार्थाय का उद्देश्य पूरा करता रहेगा और इस आध्यात्मिक स्थापना के भाव दर्शन का प्रचार ही गुरुदेव का एक अपना सपना होता है जिसे वे अपने शिष्यों अनुयायियों से साकार होते देखना चाहते हैं और इन सब का एक ही उद्देश्य होता है मनुष्य परमपिता के चिन्तन में लीन होकर अपना जीवन धन्य करे। भगवान के स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए अनेकों गुरुदेव, संत और भक्त आये जिन्होंने अपने जीवन दर्शन की समर्पणता और संदेश से मनुष्यों को जीवन के सच्चे ज्ञान प्रकाश से आलोकित किया किन्तु हम गुरुदेव की भावनाओं को कितना सम्मान आदर देते है? इस पर निर्भर होती है हमारी गुरु भक्ति क्योंकि गुरुदेव हरि हैं अपने शिष्यों को सभी दुखों का हरण करते हैं, उनके वचनरूपी भाव अज्ञान व मोह का हरण करते हैं, गुरु का

दिया हुआ ज्ञान सदैव ज्ञान का प्रकाश करता रहता है, गुरुदेव के प्रति श्रद्धा भक्ति ही ईश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति होती है। जो भक्ति का सच्चा स्वरूप होता है, वही सच्चा शिष्य होता है जिसका मन अपने गुरुदेव की सेवा में लगा रहे उनका जीवन सफल है।

उपनिषदों का कहना है—यदि मनुष्य को अपने जीवन में विद्या विमल की प्रकाशित किरण लानी है तो उसे अपने गुरुदेव के चरणों में अपने को अर्पित कर देना होगा जिससे उसका जीवन प्रभु चिन्तन में और परमपिता परमात्मा के ज्ञान से परिपूर्ण होता रहे और जीवन में आत्मकल्याण के लिए ज्ञान से विभूषित होने के लिए गुरुदेव के पास जाकर उनकी सेवा कर उसका सत्संग ज्ञान प्राप्त कर अपना जीवन सफल बना सकते हैं जिसका आह्वानपर्व है गुरुपूर्णिमा जो जीवन को गुरुदेव की कृपा से प्रकाशित करती है। उन सद्गुरुदेव का अभिनन्दन पर्व है गुरुपूर्णिमा का पर्व। इन भावनाओं के साथ महामहिम गुरुदेव को भावपूर्ण प्रणामांजलि सादर समर्पित है।

आत्म निर्माण के निमित्त समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी तथा बहादुरी की चार कसौटियों पर अपने को निरन्तर कसते रहना पड़ता है। दृष्टि दोष, भाषा-दोष तथा व्यवहार-दोष ऐसे हैं जो किसी भी व्यक्ति के विरोध का वातावरण उत्पन्न करते हैं। दोष-दर्शन, संकीर्ण दृष्टिकोण, अदूरदर्शिता अथवा अति दर्शन आदि दृष्टि दोष के सामान्य रूप हैं। दुर्भाव, स्वार्थभाव तथा अहंभाव भाव दोष के रूप हैं। कटु असत्य, अश्लील एवं अनुपयुक्त बोलना भाषा-दोष माने गये हैं।

मेरे सद्गुरुदेव परब्रह्म

अवनीश कुमार भटनागर (सहारनपुर)

चैत्र सुदी अष्टमी का रात्रि दो बजे दादा सद्गुरुदेव आदि सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की लीला स्थली श्री सिद्धगुफा में खड़े हुये इसी वर्ष रामनवमी महाप्रभु प्रादुर्भाव दिवस पर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का तीव्र शक्ति संचार व कुछ तीव्र अर्न्तप्रेरणाओं को मैं परम श्रद्धामय मन से महसूस कर रहा हूँ इनमें से कुछ अर्न्तप्रेरणाओं को मैं शाब्दिक रूप में देने का प्रयास कर रहा हूँ यदि इसमें कहीं कोई शाब्दिक त्रुटि हो तो यह मेरी ही अयोग्यता एवं विद्वता की कमी रही होगी, परन्तु आप विज्ञजन शाब्दिक त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर मूलभाव को ही समझेंगे--ऐसा मेरा विश्वास है।

अकस्मात् ही जब श्री सद्गुरुदेव जी के शरीर त्याग लीला का हमें पता चला तो इतना आघात पहुँचा कि अन्दर तो दुख का सागर उमड़ पड़ा पर बाहर तो मानो दो बूंद आंसू ही छलकर रह गये। दुनियाँ भर के संकल्पों-विकल्पों ने आ घेरा अनेकों सवाल एकदम सामने थे। अकेला यह समाचार ही दुख की सीमा लांघ गया था फिर अनेकों निरुत्तर सवाल एवं संकल्प-विकल्प सभी ने मिलकर शरीर में एक विकट स्थिति पैदा कर दी जिससे लगने लगा कि निश्चित ही सिर फट जायेगा, तुरंत ही सद्गुरु देव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के पावन स्वरूप के समक्ष जाकर हमने प्रार्थना की कि हे नाथ दयानिधि आपने तो अपने आत्मा के टुकड़ों से किनारा कर लिया क्या हमसे इतना दुख लेकर जिया जा सकेगा? इसके बाद मन की कुछ ऐसी स्थिति बनी कि आठ महीने तक श्री सद्गुरु जी की याद में न आँख से आँसुओं की लड़ी टूटी और न बीमारी में हमसे खाट छूटी इसी बीच श्री सद्गुरु सरकार की याद की बैचेनी में परम करुणानिधि घट-घट के जाननहार महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के शुद्ध परब्रह्म स्वरूप के दर्शन व आदेश उपदेश के पश्चात ही स्थिति सामान्य हुई फिर कभी ऐसा लगा ही नहीं कि हमारे सबके दयानिधान, हमारे रक्षक, सच्चे सरकार, महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्थूल रूप से नहीं हैं।

उपरोक्त दशा मेरी ही नहीं श्री सद्गुरु के लाड़ले अनेकों बच्चों की हुई। हम लोग बराबर यह भूलते रहे कि हमारे सद्गुरु वास्तव में कौन है? बस इतना मात्र समझते रहे कि सामने स्थूल रूप से विराजमान सफेद धोती कुर्ता दाढ़ी वाले, भूख लगने पर खाने वाले, प्यास लगने पर जल पीने वाले, योग सिखाने वाले, स्थूल शरीर धारी ही मात्र हमारे सद्गुरुदेव जी हैं। कदापि नहीं? श्री सद्गुरुदेव मात्र शरीर ही नहीं वरन् वह तो परमज्योर्तिमय, अखण्ड मण्डलाकार साक्षात् स्वरूप एवम् सफल सिद्धि व ईश-ऐश्वर्य के स्वामी, व दाता होते हैं। यह सभी योग ऐश्वर्य समाहित मानव आकृति में ही होता है परन्तु केवल मानव आकृति को ही मात्र श्री गुरुदेव नहीं समझना चाहिये। श्री सद्गुरु देवजी में मनुष्य वाली भावना व देवमुर्ति में पत्थर भाव एवम् औषधि में काष्ठ भाव कभी नहीं लाना चाहिये। संत चरणदास जी की शिष्या दयाबाई ने कहा भी है--"सतगुरु

ब्रह्म स्वरूप हैं मनुष भाव मत जान, जे मानुष माने दया ते है पशु समान" बल्कि श्री सद्गुरु देव जी के मनुष्य शरीर को परम शक्ति ने अपना अधिष्ठान बनाया है इसे हर समय स्मरण रखना चाहिये। वह परम सद्गुरु शक्ति सदैव रहती है, समय-समय पर प्रकट होती है; जीवों का कल्याण करती है और पुनः अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। यही शिव तत्व है, यही सद्गुरु तत्व है और यही सर्वशक्तिमान ईश्वरीय सत्ता है, इनमें आपस में तत्वतः कोई भेद नहीं है। महात्मा योगिराज कबीर दास जी कहते हैं **"गुरुगोविन्द तो एक है दूजा यह आकार, आपा मेटत जीवित मरे सो पावे करतार।"** यदि किसी गुरुदेव कहाने वाले के घर में उपरोक्त ईश ऐश्वर्य की झलक नहीं मिलती है तो वह सद्गुरु नहीं मात्र सद्गुरु का भेष बनाये उस पवित्र भेष में कोई और ही है। यदि श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्र मोहन जी के सर्वशक्ति सम्पन्न स्वरूप का हमें ज्ञान होता तो हमारी मनोदशा कुछ अलग ही होती और साथ ही यह ज्ञान भी होता कि "हम जो कर रहे हैं" उस पर उनकी दृष्टि बराबर बनी हुई है। श्री सद्गुरुदेव जी का वह शरीर ही हमारे सद्गुरुदेव का नहीं था बल्कि परमब्रह्म श्री सद्गुरुदेव तत्व ही हमारे श्री सद्गुरुदेव हैं। उनके मात्र शरीर रहने या न रहने से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी एक स्थान पर बैठे रहे हजारों जगह उपस्थित रहते थे और दृष्टिमात्र से कार्य बनाते रहते थे। अभी ऊपर यह बात आयी थी कि शरीर मात्र सद्गुरु देव नहीं होता, वैसे लगता यही रहता है कि जो सामने है अन्दर भी वही होंगे नहीं? श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी **"घटाकाश गुप्त महाकाशरूपं"** होकर भी "चिदाकाश व्यक्तं" रहते हैं। हमें भली प्रकार यह जान लेना चाहिये कि हमारे परम कल्याण धन, सच्चे जीवन स्वरूप महाप्रभु जी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सर्वशक्तिमान श्री रामलाल महाप्रभुजी के पूर्ण रूप साक्षात परम शिव है जो **"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति दीखै तिन तैसी"** के सिद्धान्तानुसार लाभ देते रहते हैं। **"महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी वह हैं जो दादा सद्गुरुदेव श्री रामलाल महाप्रभु जी हैं और महाप्रभु श्री रामलाल जी वह हैं, जो आदि सद्गुरुदेव शिव हैं। क्या? शिव कभी समाप्त हो सकते हैं और क्या कभी शिव का कल्याण व शक्ति संचार रुक सकता है? कभी नहीं।"** महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, सर्वशक्तिमान सद्गुरु सत्ता के साकार विग्रह हैं। हमारा सीधा सम्बन्ध त्रिलोक पति आशुतोष भगवान शिव से है क्योंकि हमारी गुण परम्परा प्रारम्भ ही शिव संकल्प से हुई है। सर्वशक्ति सम्पन्न सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी से सहस्त्रों-सहस्त्र संस्कारी आत्माओं का दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ उनमें से अधिकांश भाइयों ने अपने को परम धन्य मानकर विशिष्टता तो महसूस कर ली पर यह निश्चित रूप से भूल गये कि वह जिन महाप्रभु की बख्शी हुई है उनका तो हमें जन्म जन्मान्तरों तक ऋणी होना चाहिये, और जब यह देखने में आता है तो बहुत दुख होता है कि हमारे भाई लोग न गुरु देव भगवान के प्रति और न गुरुधाम (आश्रम) के प्रति और न उनकी शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार और न दी गई गुण आज्ञाओं के प्रति अपना कुछ दायित्व ही नहीं समझते बल्कि

साथ ही यह देखने में भी आता है कि इनमें से कुछ भाई लोग तो राधा स्वामी सत्संगों की शोभा बढ़ाने लगे कुछ संत श्री आसाराम जी के आश्रम के चक्कर काटने लगे, कुछ शान्तीकुंज द्वारा प्रदत्त गायत्री जपने लगे, कुछ नारायणदत्त श्रीमाली जी के यन्त्र मन्त्र तन्त्र सिद्धान्त के सेवक हो गये। और कुछ ऐसे भी होनहार निकले जो "स्वयं सद्गुरु" बन गये, इसी प्रकार अन्यान्य मतमतान्तरों में फंस गये पर वह बिल्कुल भूल गये कि परम करुणानिधि सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने उनके उद्धार के लिये किस प्रकार से कठिन परिश्रम किया और अपने शुभ संकल्प को उनके कल्याण के लिये लगाया और प्रतिक्षण यही विचारते रहे कि मेरी आत्माओं के टुकड़ों का किस प्रकार आत्म उत्थान हो व किस प्रकार भला हो,– आध्यात्मिक भी और सांसारिक भी। महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के इसी शुभ संकल्प के फलस्वरूप ही जो कुछ भी नहीं थे वह सब कुछ बन गये और अपने-अपने क्षेत्रों में नक्षत्रों की भांति चमक रहे हैं। परमकरुणार्णव श्री गुरुदेव जी अपने श्री मुखारविन्द से कहा करते थे कि "अरे तुम आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी के बच्चे हो श्री महाप्रभु जी ही तुम्हारा कल्याण करेंगे यदि कोई देवी देवता भी तुम्हारे लिये कुछ करना चाहे तो पहले श्री प्रभु जी से ही आज्ञा लेनी पड़ती है, और यदि तुम सर्व-शक्तिमान श्री प्रभु जी को पाकर भी भटकते फिरोगे तो जो मिला है वह भी एक दिन जाता रहेगा"।

हमारे भाइयों का यत्र-तत्र भटकने का एक कारण दीक्षा भी है, सोचते हैं अब दीक्षा चाहने वालों की इच्छापूर्ति कैसे हो, जहाँ कहीं भी भीड़-भाड़ देखी दो चार बड़ी-बड़ी बातें सुनी बस उसी को गुरु रूप में देखने लगे बस वहीं अपना तन, मन, धन समर्पित करके अपने को धन्य समझने लगे। श्री गुरुचरणों में आये हुये भाइयों यदि आपका संस्कार कहीं और का होता है तो आप श्री प्रभुजी के परम कल्याणमयी चरणों में आये ही नहीं होते। परम सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्र मोहन जी ने अपने मुखारबिन्दु से स्पष्ट कहा है कि जो व्यक्ति आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के बताये मार्ग पर चलना चाहता है उनका प्रकाश जीवन में चाहता है तो वह श्री प्रभुजी की नित्य नियमपूर्वक आरती पूजन, जीवन तत्वसाधन, व श्री प्रभुजी का खूब ध्यानाभ्यास करें। उनके स्वरूप को अपने सामने विराजमान करके ओंकार आदि का जप करे उसकी ध्यान स्थिति श्री प्रभु जी के प्रकाश से चल निकलेगी। सर्वशक्ति सम्पन्न सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु नित्य चेतन है, साक्षात ब्रह्म हैं, सच्चिदानन्द हैं, आनन्दकन्द है, जो भी एक बार उनके सामने आया उसको उन्होंने **"दृग दीक्षा"** और जिसको भी एक बार छू दिया उसको **"स्पर्श दीक्षा"** जिसको अपनी छाती से लगा लिया **"हार्दिक दीक्षा"**, और जिसको सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दे दिया या पुष्प प्रसाद अथवा तीव्र या हल्का शक्ति संचार किया उसे **"शक्तिपात दीक्षा"** तत्क्षण ही दीथी, और जिसको कृपा करके अपने श्रीमुख से कुछ भी शब्द कह दिया या आज्ञा दे दी, तो वह **"मन्त्रमूल गुरुवाक्यं"** बनकर प्राप्ति का साधन बन गया जिसको "मन्त्र दीक्षा" के नाम से जाना गया। परमकल्याण विधान सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी अब भी स्वयं पात्रों की सुपात्रता को देखकर अनेकों स्थानों पर स्थूल जप में प्रकट होकर दीक्षायें दे रहे हैं। जिन संस्कारी आत्माओं को श्री सद्गुरुदेव जी से दीक्षा सम्बन्ध नहीं बन पाया

और वह यह चाहते हैं कि श्री प्रभुजी ही हमारे गुरुदेव हैं तो वह श्री सद्गुरु देव जी के इस विधान के अनुसार चले "श्री प्रभु जी एवम् श्री गुरुदेव जी के शक्तिदाता स्वरूपों की नियमित आरती पूजन श्री प्रभुजी के सामने बैठकर ध्यानाभ्यास खानपान को शुद्ध रखें, रीढ़ की हड्डी सीधी रख कर जप करें। इतना करने से श्री प्रभुजी की परम कल्याणकारी दृष्टि में वह अवश्य ही आ जायेगा और श्री प्रभुजी की दृष्टि पड़ जाने पर उनका तेज उसका आत्मविश्वास फल देगा यही उसकी दीक्षा होगी और जिस प्रकार श्री सद्गुरुदेव जी श्री प्रभु जी का पूजन दीक्षार्थी से कराया करते थे उसी भक्तिभाव से भी सिद्ध गुफा में जाकर एक बार पूजन अवश्य करके फिर श्री सद्गुरुदेव जी को अपने गुरुदेव और अपने को उनका शिष्य दृढ़ मन से मान ले बस वही गुरु शिष्य का नाता बन जायेगा, शिष्य इस रिश्ते की मर्यादा रख दृढ़ता से अभ्यास करे, श्री गुरुदेव जी भी इस रिश्ते की मर्यादा अवश्य ही रखते हैं। और शक्ति संचारित करते रहते हैं। मेरे स्वामी, मेरे सरकार श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी ने बहुत-बहुत प्रकाश जगत को दिया है, जिससे सारा जगत ही आध्यात्मिक हो जाना चाहिये था। पर कुपात्र व सुपात्र प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्व रखते हैं। वैसे आने वाले बहुत-बहुत वर्षों तक श्री सरकार द्वारा दिया गया जगत का मार्ग आलोकित करता रहेगा। ऐसे में हम श्री प्रभुजी के बच्चों का तो यह कर्तव्य ही बन जाता है कि श्री चन्द्रमोहन भगवान के सर्वत्र फैले दिव्यलोक से अपने को लाभान्वित करके स्वयं को भी ज्योतिर्मय बना लें। करुणानिधान श्री सद्गुरुदेव जी ने अपने श्री चरणों में लेने के पश्चात् अपने बच्चों के संस्कार चक्र के भुगतान के लिये एक व्यवस्था बनाई, जन्मजन्मांतरों से दबे क्लिष्ट संस्कारों का थोड़े में भुगतान और जब जन्मजन्मातरों के यह क्लिष्ट संस्कार एक जगह आकर एकत्र होता है तो निश्चित ही कुछ व्याकुलता कुछ कष्ट बढ़ा हुआ सा लगता है, इससे घबराना नहीं चाहिये श्री सद्गुरु देवजी का चिन्तन दृढ़ता से करते रहना चाहिये फिर श्री सद्गुरुदेव अपनी छाया में रखकर क्लिष्ट संस्कार का भुगतान सुगमतापूर्वक करवा देते हैं। कुछ भाई बहिन यह कहते हुये मिलते हैं कि हमारे तो संकट कटते ही नहीं हम तो श्री सद्गुरु देव जी के बताये रास्ते पर ही चलते हैं सत्यता तो जबकि यह है कि भाइयों की लाखों की भीड़ में से बहुत थोड़े से ही भाई वास्तव में श्री सद्गुरुदेव जी के बताये रास्ते पर चल रहे हैं। बाकी सब ने न जाने स्वेच्छा से कौन-कौन से रास्ते बना लिये। वास्तव में तो यदि हम गुणमार्ग के पथिक होते तो संकट हमें विचलित ही नहीं कर सकते आते और चले जाते।

साधक यदि नित्य अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करता रहे श्री रामलाल महाप्रभुजी एवम् श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी को बिलकुल भी विस्मृत नहीं करे और कभी शंका भूलकर भी नहीं करे फिर परमकरुणा निधान महाप्रभु का प्रकाश तो मिलता ही है क्योंकि "श्री महाप्रभु जी का नाम सिद्ध, श्री महाप्रभु जी का काम सिद्ध है, श्री महाप्रभु जी का धाम सिद्ध है। श्री महाप्रभु जी का नाम गुरु है, श्री महाप्रभु जी का काम गुरु है, श्री महाप्रभु जी का धामगुरु है"। ऐसे सर्वशक्तिमान सिद्ध सद्गुरु को एक पल के लिये भी विस्मृत नहीं करना चाहिये और हर समय ऐसे परम तत्व की इस निम्नांकित भाव से स्तुति करते रहना चाहिये–

"गुरुसाक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरुवे नमः"

प्राण तत्व की वैज्ञानिक कसौटी

श्रीराम आचार्य

भारतीय मान्यता है कि मनुष्य की स्थूल काया में व्याप्त उसी के अनुरूप एक प्राण भी होता है। प्राण शरीर-शरीरस्थ प्राण संस्थान के न केवल अस्तित्व का, बल्कि उसके गुण, धर्मों तथा क्रियाकलापों प्रभावों आदि का भी वर्णन विस्तारपूर्वक ग्रंथों में मिलता है। इस मान्यता को स्थूल विज्ञान बहुत दिनों तक झुठलाता रहा, किन्तु शरीर विज्ञान के संदर्भ में जैसे-जैसे उसकी जानकारियाँ बढ़ रही हैं, प्राण संस्थान के अस्तित्व को एक सुनिश्चित तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। भौतिक विज्ञान के स्थूल उपकरणों की पकड़ में भी इस सूक्ष्म सत्ता के अनेक प्रमाण आने लगे हैं।

प्राण तत्व को एक चेतना ऊर्जा कहा गया है। भौतिक विज्ञान के अनुसार एनर्जी के छः प्रकार माने जाते हैं-ताप, प्रकाश, चुम्बकीय, विद्युत, ध्वनि, घर्षण अथवा यांत्रिक। एक प्रकार की एनर्जी को किसी दूसरे प्रकार की एनर्जी में बदला भी जा सकता है। शरीरस्थ चेतन क्षमता-लाइव एनर्जी इन विज्ञान समस्त प्रकारों में भिन्न होते हुए भी उनके माध्यम, से जानी समझी जा सकती है।

शरीर विज्ञान में अब कायिक विद्युत पर पर्याप्त शोध हो रहे हैं। शरीर में कुछ केन्द्र तो निर्विवाद रूप से विद्युत उत्पादक केन्द्रों के रूप में स्वीकार कर लिए गए हैं। उनमें प्रधान हैं-मस्तिष्क, हृदय तथा नेत्र। मस्तिष्क में विद्युत उत्पादन केन्द्र को वैज्ञानिक 'रेटिकुलर एक्टिवेटिंग सिस्टम' कहते हैं। मस्तिष्क के मध्य भाग की गहराइयों में स्थित कुछ मस्तिष्कीय अवयवों में से विद्युत स्पन्दन पैदा होते रहते हैं तथा सारे मस्तिष्क में फैलते जाते हैं। यह विद्युतीय आवेश ही मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों को संचालित तथा उनसे परस्पर संबंधित रहते हैं। चिकित्सा विज्ञान में प्रयुक्त मस्तिष्कीय विद्युत मापक यंत्र (इलेक्ट्रो एन्कैफ्लोग्राफ) ई. ई. जी. द्वारा मस्तिष्कीय विद्युत धाराओं को नापा जाता है। उन्हीं के आधार पर मस्तिष्क एवं सिर से संबंधित रोगों के बारे में निर्धारण किया जाता है।

शरीरस्थ प्राण प्रवाह के माध्यम से रोगों के निदान पर चिकित्सा शास्त्रियों का विश्वास दृढ़ हो गया है। मांस-पेशियों की निष्क्रियता तथा स्नायु संस्थान के रोगों में भी प्राणांकन पद्धति प्रयुक्त की जाती है। इसके लिए एम. जी. (इलेक्ट्रोमायो ग्राफ) का प्रयोग होता है। शरीर के हर क्षेत्र के स्नायुओं अथवा मांस-पेशियों में विद्युतीय ऊर्जा की उपस्थिति तथा सक्रियता का यह स्पष्ट प्रमाण है। यहाँ तक कि शरीर की त्वचा जैसी पतली पर्त में भी उसकी अपने ढंग की विद्युत विद्यमान है। चिकित्साशास्त्री त्वचा के परीक्षण में भी त्वक विद्युतीय प्रतिक्रिया (गैल्वॉनिक स्किनरिस्पॉन्स) पद्धति प्रयोग करते हैं।

इन वैज्ञानिक प्रमाणों के अतिरिक्त सामान्य व्यावहारिक जीवन में भी मस्तिष्क से लेकर त्वचा तक में विद्युत संवेगों की क्षमता के प्रमाण मिलते

रहते हैं। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति आकर्षण तथा किसी के प्रति विकर्षण, यह शरीरस्थ विद्युत की समानता, भिन्नता की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। दो मित्रों के परस्पर एक-दूसरे को देखने, स्पर्श करने में विद्युतीय आदान-प्रदान होता है। योगी तो स्पर्श से अपनी विद्युत का दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश प्रयोग संकल्प शक्ति के सहारे विशेष रूप से कर सकते हैं, किन्तु सामान्य स्पर्श से भी शरीरस्थ विद्युत का आंशिक आदान-प्रदान होता है। स्पर्श, सहलाने, हाथ मिलाने, गले मिलने आदि से जो स्पन्दन अनुभव किये जाते हैं वे विद्युतीय आवेगों के ही आदान-प्रदान के फलस्वरूप होते हैं। यह तथ्य भी अब वैज्ञानिक स्वीकार करने लगे हैं।

भारतीय मत रहा है कि शरीर का अस्तित्व बनाये रखने, उसके पोषण, पुनर्निर्माण, विकास एवं संशोधन जैसी हर क्रिया प्राण द्वारा ही संचालित है। अन्नमय कोश में व्याप्त प्राणमय कोश ही उनका संचालन, नियंत्रण करता है। शरीर संस्थान की छोटी से छोटी इकाई में भी प्राण विद्युत का अस्तित्व अब विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है। शरीर की हर कोशिका विद्युत विभव (इलेक्ट्रिक चार्ज) है। यही नहीं, किसी कोशिका के नाभिक (न्यूक्लियस) में लाखों की संख्या में रहने वाले जीन्स जैसे अति सूक्ष्म घटक भी विद्युत आवेश युक्त पुटिकाओं (पैकिट्स) के रूप में जाने और माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि विज्ञान द्वारा जानी जा सकी शरीर की सूक्ष्मतम इकाई में भी विद्युत आवेश रूप में प्राण तत्व की उपस्थिति स्वीकार की जाती है।

शरीर की हर क्रिया का संचालन प्राण द्वारा होने की बात भी सदैव से कही जाती है। योग ग्रंथों में शरीर की विभिन्न क्रियाओं को संचालित करने वाले प्राण तत्व को विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। उन्हें पंच प्राण कहा गया है। वर्तमान शरीर विज्ञान ने भी शारीरिक अन्तरंग क्रियाओं की व्याख्याएँ विद्युत संचार क्रम के ही आधार पर की है। शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो संचार क्रम चलता है, वह विद्युतीय सम्वहन प्रक्रिया के माध्यम से ही है। संचार कोशिकाओं में ऋण और धन प्रभार (निगेटिव तथा पॉजिटिव चार्ज) अंदर बाहर होते रहते हैं और इसी से विभिन्न संचार क्रम चलते रहते हैं। इसे वैज्ञानिक भाषा में सैलका डिपोलेराइजेशन तथा 'रीपोलेराइजेशन' कहते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय मान्यतानुसार पंच प्राणों में वर्णित 'व्यान' के अनुरूप है।

आमाशय तथा आँतों में भोजन का पाचन होकर उसे शरीर के अनुकूल रासायनिक रसों में बदल दिया जाता है। वह रस आँत की झिल्ली में से पार होकर रक्त में मिलते हैं, तब सारे शरीर में फैल पाते हैं। कुछ रसायन तो सामान्य संचरण क्रम से ही रक्त में मिल जाते हैं, किन्तु कुछ के लिए शरीर को शक्ति खर्च करनी पड़ती है। इस विधि को 'ए' एक्टिव ट्रांसपोर्ट (सक्रिय परिवहन) कहते हैं। यह परिवहन इस आँतों में जो विद्युतीय प्रक्रिया होती है उसे वैज्ञानिक सोडियम पम्प के नाम से संबोधित करते हैं। सोडियम कणों में ऋण और धन प्रभार बदलने से वह सैलों की दीवार के इस पार से उस पार जाते-आते हैं। उसके संसर्ग में शरीर के पोषक रसों (ग्लूकोज, वसा आदि)

की भेदकला बढ़ जाती है तथा वह भी उसके साथ संचरित हो जाते हैं। यह प्रक्रिया पंच प्राणों में प्राण वर्ग के अनुरूप कही जा सकती है।

ऐसी प्रक्रिया हर सैल में चलती है। हर सैल अपने लिए उपयुक्त आहार खींचता है तथा उसे ताप ऊर्जा में बदलता है। ताप ऊर्जा भी हर समय सारे शरीर में लगातार पैदा होती और संचरित होती रहती है। पाचन केवल आँतों में नहीं शरीर के हर सैल में होता है। उसके लिए रसों को हर सैल तक पहुँचाया जाता है। यह प्रक्रिया जिस प्राण ऊर्जा के सहारे चलती है, उसे प्राणवेत्ताओं ने 'समान' कहा है। इसी प्रकार हर कोशिका में रस परिपाक के दौरान तथा पुरानी कोशिकाओं के विखण्डन से जो मल बहता है, उसके निष्कासन के लिए भी विद्युत रासायनिक (इलेक्ट्रो) क्रियाएँ उत्तरदायी हैं। प्राण विज्ञान में इसे 'अपान' की प्रक्रिया कहा गया है।

पंच प्राणों में एक वर्ग 'उदान' भी है। इसका कार्य शरीर के अवयवों को कड़ा रखना है। वैज्ञानिक भाषा में इसे इलेक्ट्रिकल स्टिमुलाइजेशन कहा जाता है। शरीरस्थ संवेगों से अन्नमय कोश के सैल किसी भी कार्य के लिए कड़े अथवा ढीले होते रहते हैं।

इन मोटी गतिविधियों से आगे बढ़कर शरीर की सूक्ष्म, गहन गतिविधियों का विश्लेषण करने पर उनमें भी प्राण, शरीरस्थ प्राण तत्व का नियंत्रण तथा प्रभाव दिखाई देता है। शरीर में हारमोनों और एन्जाइमों की अद्भुत प्रक्रिया सर्वविदित है। इन दोनों की सक्रियता शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने एवं शक्ति संचार करने में समर्थ है। विज्ञान के अंतर्गत जीन्स की विलक्षण भूमिका की चर्चा आजकल वैज्ञानिक क्षेत्र में सर्वत्र की जाती है। इन सभी को विद्युत चुम्बकीय संवेगों द्वारा प्रभावित किए जाने की संभावना वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं तथा उसके लिए तीव्र शोध किये जा रहे हैं। विश्वास किया जाता है कि ऐसी विधि हाथ लग जाय तो शरीर क्षेत्र में हर चमत्कार संभव हो जायेगा। ऋषियों ने, प्राण प्रक्रिया द्वारा शरीरस्थ संस्थान में चमत्कारी परिवर्तन लाने के लिए प्राणमय कोश की शुद्धि शरीरस्थ प्राण ऊर्जा के प्रयोग की बात बलपूर्वक कही है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं। स्थूल विज्ञान की दृष्टि से ही मस्तिष्क एवं हृदय जैसे विलक्षण केन्द्रों से लेकर त्वचा तक में व्याप्त प्राण संस्थान तथा उसके प्रभाव को स्वीकार किया जा रहा है। योग दृष्टि तो इससे भी सूक्ष्म रही है। उसके द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे और भी अधिक गहन तथा व्यापक स्तर के रहस्यों तथा तथ्यों के प्रकट करने वाले होने ही चाहिए। अस्तु, प्राणमय कोश को परिष्कृत एवं सबल बनाकर न केवल अपने शरीर, बल्कि दूसरे शरीरों को भी प्रभावित एवं विकसित करने की बात कोई अतिशयोक्ति नहीं है। प्राण तत्व संबंधी विज्ञान जैसे-जैसे प्रगति करेगा, तत्व द्रष्टाओं की विलक्षण किन्तु तथ्यपूर्ण घोषणाओं को नतमस्तक होकर स्वीकार करता चलेगा।

योगासन और उनके लाभ

मुक्तासन

पाय मूले बामगुल्फं, दक्षगुल्फं तथोपरि।
शिरोग्रीवासम कार्य, मुक्तासनं तु सिद्धिदम्।।

बांये पांव की ऐड़ी को पायुमूल में लगाकर उस पर दांये पांव की ऐड़ी रखे और शिर तथा ग्रीवा को समान रखकर शरीर को सीधा रखता हुआ बैठे। यह **मुक्तासन** योगियों के लिए सिद्धि प्रदान करने वाला है।

सभी साधकों को भी यह मुक्तासन सिद्धियों को देने वाला बताया गया है। जबालादर्शनोपनिषद ने मुक्तासन का वर्णन इस प्रकार किया है-

निपीडय सीवनीं सूक्ष्मं, दक्षिणेतर गुल्फतः।
वामं यास्येन गुल्फेन, मुक्तासनदिदं भवेत्।।

सीवनी की बारीक रेखा को बांये घुटने से दबाकर दांये घुटने से बांये को दबावें। इस प्रकार यह **मुक्तासन** होता है।

वज्रासन

जंघाभ्यां वज्र वत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ।
वज्रासनं भवेदेतत्, योगिनां सिद्धिदायकम्।।

दोनों जंघाओं को वज्र के समान दृढ़ करके दोनों पांवो को गुदा के दोनो ओर लगावें तो **वज्रासन** होता है। यह आसन योगियों के लिए सिद्धि देने वाला है।

यह आसन अत्यन्त उपयोगी और सरल है, दोनो पांवों को पीछे करके घुटनों को धरती में टेक देना चाहिये। नमाज पढ़ते समय मुस्लिम साधक प्रायः इसी आसन से बैठते हैं।

स्वास्तिकासन

जानूर्वोन्तरं कृत्वा, योगीपादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः, स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।।

दोनों जांघों और घुटनों के मध्य दोनों तलवों को रखकर त्रिकोणाकार आसन लगावे और समभाव से बैठे, इसे **स्वस्तिकासन** कहते है।

यह आसन भी कुछ कठिन नहीं है। त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद् में इसका रूप इस प्रकार कहा गया है-

वर्ण्यते स्वस्तिकं, पादतलयोरूभयोरपि।
पूर्वोत्तरे जानुनीद्वे, कृत्वाऽऽसनमुदीरितम्।।

'दोनो पांवों के तलुओं को दोनों घुटनों के मध्य में करके बैठना ही **स्वस्तिकासन** है। कितना सीधा, सरल विवेचन है।

गोमुखासन

पादौ च भूमौ संस्थाप्य, पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्।
स्थिरकायं समासाद्य, गोमुखं, गोमुखाकृतिः।।

पृथ्वी पर दोनों पाँवो को रखकर और पीठ के दोनों पार्श्वों में लगाकर देह को सीधा करके गो के मुख के समान ऊँचा करके बैठने को **गोमुखासन** कहते हैं।

इस आसन की स्थिति गोमुख की आकृति जैसी होती है। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार-

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखं यथा।।

पीठ के बायीं ओर दायीं गुल्फ को और दायीं ओर बांये गुल्फ को लगाने से जो गौ के मुख के समान आसन बनता है, वही **गोमुखासन** है।

वीरासन

एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदुरुसंस्थितम्।
इत्तरस्मिंस्थतापश्चाद्वीरासननितिस्मृतं।।

एक जाँघ पर एक पांव रखकर दुसरे पांव को पीछे की ओर निकालने से वीरासन हो जाता है।

वीरासन का वर्णन सभी योग ग्रन्थों में इसी प्रकार मिलता है। **"एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्योरूणि संस्थितः"** इत्यादि (शाण्डिल्योपनिषद) के अनुसार भी एक जांघ को एक पांव से तथा दूसरी जांघ को दूसरे पांव से मिलाकर बैठना वीरासन कहलाता है।

धनुरासन

प्रसार्यपादौभुविदण्डरूपौकरौ चपृष्ठेधृतपादयुग्मम्।
कृत्वाधनुस्तुल्यविवर्तितांगं निगद्यमोगी धनुरासनन्तत्।।

दोनों पांवों को भूमि पर सीधे फैला दे, दोनों हाथों को पीठ की ओर करके दोनों चरणों को पकड़ ले तथा धनुष के आकार में शरीर को करले, योगियों के अनुसार यह **धनुरासन** है।

इस आसन की स्थिति बिल्कुल धनुष जैसी होती है। त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार-

पादांगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षकाकृष्टं धनुरासनमीरितम्।।

दोनों पांवों के अँगूठे को पकड़कर धनुष के आकार में कानों तक खींचने से धनुरासन होता है। इस प्रकार यह आसन भी कुछ कठिन नहीं है।

मृतासन

उत्तानं शववद्भूमौ शयानं तु शवासनम्।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।।

मृतक के समान अपने सब शरीर को ढीला करके धरती पर लेट जाय । यह **शवासन** श्रम को दूर करने और चित्त को सन्तोष देने वाला है।

यह आसन भी बहुत सरल है। अपने सम्पूर्ण शरीर को मुर्दे के समान ढीला छोड़कर पृथ्वी पर लेट जाने से यह आसन सिद्ध हो जाता है इससे शारीरिक और मानसिक थकान मिटती है और चित्त में प्रसन्नता के भाव उदय होते है अर्थात चिन्ता मिट जाती है।

गुप्तासन

जानुनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत्।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदंगुप्तासन विदुः।।

दोनों घुटनों के मध्य भाग में दोनों पांवों को छिपाकर रखे और पांवों को गुह्य प्रदेश को कर ले, यह **गुप्तासन** कहलाता है।

यह आसन भी बहुत सरल, सुबोध है और उपर्युक्त स्थिति में सिद्ध हो सकता है, इसलिये अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

मत्स्यासन

मुक्तं पद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।
कूर्पराभ्यांशिरोवेष्ट्यमत्स्यासनं तु रोगहा।।

मुक्तासन की स्थिति में हाथों की कुहनियों से सिर को लपेट ले और धरती में चित्त लेट जाय। यह रोगों को नष्ट करने वाला मत्स्यासनं कहलाता है।

मत्स्य का अर्थ है मछली और मत्स्यासन का अर्थ है मछली जैसी स्थिति में बैठना। इस आसन से सभी रोग दूर हो सकते है।

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्यपादौभुविदण्डरूपौविन्यस्तभालंचितियुग्ममध्ये।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां योगीन्द्रपीठं पश्चिमतानमाहुः।।

दोनों पांवों को पृथ्वी पर फैला कर दोनों हाथों से पांवों के अँगूठों को पकड़ ले, फिर दोनों जाँघों पर सिर को रखे तो यह पश्चिमोतान आसन होगा।

यह आसन भी कुछ कठिन नहीं। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् में भी ऐसा ही कहा है कि-

प्रसार्य भुवि पादौ तु दोर्भ्यामंगुष्ठमादरात्।
जानूपरि ललाटं तु पश्चिमं ताणमुच्यते।।

दोनों पांवों को पृथ्वी पर फैला कर दोनों हाथों से पांवों के अँगूठों को पकड़ ले और फिर सिर को घुटनों पर टिकावे, यह पश्चिमोत्तानासन।।

मयूरासन

धरामवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्यांतत्कूर्परेस्थापितनाभिपार्श्वं।
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतं प्रवदन्ति पीठम्।।

दोनों हाथों की हथेलियां धरती में टिका कर दोनों कुहनियों को पार्श्वों में लगालें। फिर दोनों पांवों को पीछे की ओर इस प्रकार खड़े करें, जिस प्रकार कि डण्डे को खड़ा किया जाय। यह **मयूरासन** कहलाता है।

'मायूरमेतं' यह आसन मायूर है। मयूर का अर्थ मोर और मोर के समान स्थिति बना लेने का अर्थ **मयूरासन**। जिस प्रकार मोर अपने दो पतले पाँवों के सहारे खड़ा रहकर अपने भारी शरीर को साधे रहता है, उस प्रकार खड़े रहने का अभ्यास ही **'मायूर'** है। वैसे यह आसन कठिनाई से अभ्यास में आता है। इसलिए इसमें अधिक समय लगना भी स्वाभाविक है।

-घेरण्ड संहिता से

स्वार्थमय उपायों एवं अभिप्रायों को पूर्णतः त्याग दो। वे आपको परिछिन्न रखते हैं। समस्त वासनाएँ राग हैं। व्यक्तिगत अथवा शरीरगत प्रेम आसक्ति है। उसे भूल जाओ और पवित्र हो जाओ। इससे आपका शरीर स्वस्थ तथा बुद्धि पूर्ण स्वरूप हो जायेगी। अपनी आत्मा में डूब जाना सबसे बड़ा परोपकार है।

शरीर छीजता क्यों है?

डा. अविनाशचन्द्र

शरीर एक ऐसा यन्त्र है कि जिसके कल पुरजे हमेशा घिसते-बनते रहते हैं। उसके कोशाणु (कोशिकाएँ-सैल) का संहार और निर्माण-कार्य सतत् जारी है। बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक निर्माण की क्रिया का क्रम तीव्र गति से चलता है, उसके पश्चात् वृद्धावस्था में निर्माण की क्रिया शिथिल और ह्रास (मुरझाने) की क्रिया तीव्र हो जाती है। मनुष्य छीजने लगता है। बुढ़ापा उसे घेर लेता है। जब तक कोशिकाओं का निर्माण-कार्य उचित ढंग से चलता रहता है हम स्वस्थ रहते हैं। यह जानने के लिये कि हम स्वस्थ हैं या नहीं स्वतः अनुभूत स्वास्थ्य-परीक्षा के कतिपय नियम यहाँ दिये जाते हैं–

(1) आपकी त्वचा मुलायम, लचीली, चिकनी, स्वस्थ और नरम होनी चाहिये। खुजलाने पर उसमें लकीरें अथवा चिन्ह न आने चाहियें।

(2) मुख-मण्डल पर झुर्रियाँ, शुष्कता और होठों पर पपड़ियाँ नहीं पड़नी चाहिये।

(3) आँखें चमकीली, स्वच्छ और नाक की ओर कोनों में कुछ एक सुर्ख डोरे होने चाहियें। आँखें पीली, डबडबाई और लाल न होनी चाहियें।

(4) जीभ चिकनी, गुलाबी, समतल और साफ होनी चाहिये। दाँत मोती के समान साफ और चमकदार हों।

(5) प्रत्येक अंग दैहिक पारस्पर्य की रक्षा करते हुए सुडौल होना चाहिये। स्वस्थ व्यक्ति का सिर शरीर की ऊँचाई का आठवाँ भाग, कमर पतली और छाती चौड़ी होनी चाहिये। उदर सीने से आगे उभरा न हो।

(6) बाल स्निग्ध, बारीक और मुलायम हों।

(7) श्वांस की गति साधारण और बिना किसी स्पष्ट शब्द के निर्गन्ध होनी चाहिये।

(8) निद्रा अटूट, गहरी, लम्बी और बिना किसी स्वप्न के समाप्त होनी चाहिये।

(9) गर्दन और हाथ-पाँव की नसें उभरी नहीं होनी चाहिये।

(10) पसीना दुर्गन्धयुक्त अच्छा नहीं।

(11) मुख का स्वाद अच्छा रहे। बार-बार थूकने और गला साफ करने की आवश्यकता न पड़े।

(12) मल बँधा हुआ होना चाहिये और उस पर एक चमकदार हवाई झिल्ली हो। स्वस्थ मनुष्य के मल में बदबू नहीं होनी चाहिये।

(13) प्रातः काल सोकर उठने के पश्चात शरीर में पर्याप्त स्फूर्ति, उत्साह और ताज़गी का होना आवश्यक है।

(14) भोजन के पश्चात् पेट में गड़गड़ाहट की आवाज नहीं होनी चाहिये और न पेट इतना भारी होना चाहिये कि आलस्य मालूम हो अथवा लेटने की आवश्यकता महसूस हो।

(15) मल त्याग में अधिक विलम्ब न हो, बिना किसी अड़चन के मलत्याग हो जाये और त्वचा में न लगे।

(16) पैर गर्म और सिर ठण्डा रहे। प्रत्येक ऋतु में शरीर का वही तापमान रहना चाहिये।

(17) दोनों समय खुलकर भूख लगे और भोजन में रुचि हो।

(१८) मूत्र धार बाँधकर बाहर निकले और रंग साफ हो। नाखून सुर्ख, गुलाबी और पैर के तलवे त्वचा की रंगत से मिलते-जुलते हों।

यदि इस स्वास्थ्य-परीक्षा में हम अपने को उत्तीर्ण समझते हैं तो हमें समझना चाहिये कि हमारा शरीर स्वस्थ है, वह छीज नहीं रहा है (यों तो शरीर कोशाणु हमेशा छीजते हैं पर जब उनका छीजना जारी ही रहता है और निर्माण-कार्य शिथिल पड़ जाता है, बन्द हो जाता है, तब हम समझते हैं कि शरीर 'छीज' रहा है, विनाश की ओर जा रहा है)। अब हम उन कारणों पर विचार करेंगे जो शरीर कोशाणु के नव-निर्माण में बाधक होते हैं और जिससे घिसे हुए कोशाणु (सैल) की क्षति-पूर्ति नहीं हो पाती। डा. रामचन्द्र अनन्त राहरकर ने ऐसी दस बातें बताई हैं जो शरीर-संवर्द्धन में बाधक समझी गयी हैं:

(1) **वंश-परम्परा** (संस्कार), क्षय, मधुमेह, पागलपन, वीर्य-सम्बन्धी भयंकर बीमारी, उपदंश आदि रोगों से शरीर इतना अधिक छीजता है कि उसकी पूर्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होती है।

(2) **सांघातिक रोग**—हैजा, विषम ज्वर, (टाइफाइड), चेचक आदि।

(3) शरीर में ऐसी **औषधियों का अत्यधिक प्रवेश** जो विष से तैयार की जाती हैं, निर्माण कोशिकाओं की बाढ़ में बाधक होता है।

(4) निःसत्व अन्न सेवन से भी शरीर घटना और आयु कम होती है।

(5) गन्दी और अपर्याप्त वायु।

(6) शरीर के अन्दर स्थित ग्रन्थियों के अन्तःस्राव की कमी या अधिकता।

(7) शरीर का दुर्घटनाओं का शिकार होना, उस पर चोट पड़ना और सामर्थ्य से बाहर मानसिक परिश्रम करना।

(8) शरीर के अंगों का समुचित उपयोग न करना। व्यायाम के अभाव में जब अंगों में रक्त-संचालन भलीभाँति नहीं हो पाता तो वे शिथिल हो जाते हैं, छीजने लगते हैं।

(9) मानसिक श्रम का अतिरेक।

(10) बुद्धि का अकारण व्यय, मानसिक अस्वास्थ्य और चिन्ताओं का अतिरेक।

विक्टर डेन ने 'बूढ़े क्यों होते हो?' शीर्षक निबन्ध में बुढ़ापे के कारणों की चर्चा करते हुए लिखा है-"सब उत्तेजक मनोविकार हमारी आयु को घटाने वाले हैं। उनसे चेहरों पर झुर्रियाँ ही नहीं पड़तीं, अपितु वे हमारे शरीर में इस तरह का विष पैदा करते हैं जिससे हमारा रक्त दूषित हो जाता है।"

अतएव यदि हमें दीर्घायु प्राप्त करना इष्ट हो (जल्दी मरना कौन चाहेगा?) तो हमें चाहिए कि हम घृणा, पाशविक आवेग, क्रोध, द्वेष आदि तीव्र मनोविकारों से अपने को बचाते रहें। सच्चा आवेग जैसे प्रेम, तब तक हानिकारक नहीं बनता, जब तक कि उसमें पाशविक वासना का प्रवेश नहीं हो पाता। वासनामय प्रेम शरीर को नष्ट करने वाला होता है।" यहाँ मेरा मतलब यह नहीं" है कि पति-पत्नी का प्रेम सर्वथा बहन-भाई सा ही रहे, मेरा आशय यही है कि वासनामय आवेग में अति न होने पावे। हमें अपने मनोविकारों के संयम का अच्छा उदाहरण मिलता है। सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य विकारों का जल्दी और अधिक शिकार होता है, इसलिये इसकी जीवन-शक्ति बढ़ नहीं पाती।

एक अमरीकी डा. एरनाल्ड ने रोगों को मनुष्य के विकारों का परिणाम बताते हुए लिखा है-"हम स्वयं अपनी बीमारियों का चुनाव करते हैं और अपनी मृत्यु के समय का भी।" अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने कुछ रोगियों के

उदाहरण भी दिये हैं। उनके पास एक तरुण स्त्री आई जिसे कोई रोग न होते हुए भी उसके मन में यह बात जम गई थी, क्योंकि उसकी माँ, दादी भरी जवानी में मर गई थी, इसलिये उसके मरने का समय आ गया है। कई गठिया के रोगियों के मूल में उनके मन में किसी के प्रति तिरस्कार के भाव थे। अमरीका में 85 प्रतिशत विभिन्न रोगों के रोगी जीवन में निराशा के शिकार पाये जाते हैं। कुछ प्रतिशत किसी न किसी रोग से आक्रान्त होने की चर्चा कर दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करते रहते हैं। डाक्टर का यह भी मत है कि घर परिवार का प्रेम न मिलने और सुख-विहीन जीवन से क्षय जैसे रोग हो जाते हैं। डाक्टर ने एक ऐसे पी. एच. डी. के प्रत्याशी का वर्णन किया है जो जब-जब परीक्षा भवन में जाता और एक-दो प्रश्न कर चुकता, उसका हाथ सुन्न हो जाता। डाक्टरी परीक्षा में सचमुच उसे लकवा मार जाता। पर जब वह परीक्षा न देने का विचार करता तो वह स्वस्थ हो जाता और उसके हाथ की सुन्नता जाती रहती। तीन बार ऐसी ही घटनायें घटीं। अन्त में जब उसने सदा के लिये परीक्षा न देने का संकल्प कर लिया तो वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। परीक्षा-भवन में जाते ही हाथ में पक्षाघात हो जाने का कारण उसके मन में परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का भय था। मैं अपना भी अनुभव बता दूं जब मैं सोलह-सत्रह वर्ष का था तब डाक्टरी परीक्षा के समय ज्योंही डाक्टर ने स्टेथोस्कोप छाती पर रखा तो मैं इस भय से घबरा गया कि कहीं क्षय या हृदय-रोग तो नहीं है जो यह यन्त्र लगाकर जाँच कर रहा है। इसके पूर्व मैंने कभी डाक्टरी परीक्षा नहीं कराई थी। अतः मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि डाक्टर सामान्य रीति से फेफड़ों और हृदय की जाँच करता है। परिणाम यह हुआ कि डाक्टर हृदय की अस्वाभिक धड़कन से शंका में पड़ गया। उसने थोड़ी देर बाद पुनः परीक्षा ली और पुनः वैसी ही हृदय की धड़कन बढ़ने लगी। उसने पूछा,"क्या आज खाना नहीं खाया,उपवास किया है?" मैंने कहा," नहीं तो।" तब उसने कहा, "प्रातः दो तीन मील घूमा करो। तुम्हें कोई शिकायत नहीं है। आठ दिन बाद आना फिर देखेंगे।" आठ दिन के बाद उसने परीक्षा ली तो सब कुछ सामान्य था। इस बीच मैंने जान लिया था कि बीमार अंगों की परीक्षा के लिये ही डाक्टर छाती ठोकते-पीटते और यन्त्रसे धड़कनें गिनते हैं। वे सामान्यतः सभी व्यक्तियों, रोगी और निरोगी की परीक्षा करते समय इस प्रकार की क्रिया करते हैं।

एक बार एक मित्रने एक 'गार्ड' का बड़ा रोचक किस्सा सुनाया। एक स्वस्थ गार्ड बिलासपुर स्टेशन से गाड़ी लेकर कटनी (मध्य प्रदेश) की ओर चला। एक मसखरे मित्र ने जो गार्ड का स्वभाव जानता था, एक स्टेशन के बाद उससे हाथ मिलाते हुए कहा, "गार्ड साहब आपका हाथ तो गर्म मालूम पड़ता है, ज्वर तो नहीं है।" गार्ड ने कहा, "नहीं तो, मैं तो भला-चंगा कार्य पर आया हूं।" अगले स्टेशन पर पहुंचने पर मसखरे ने अपने दूसरे साथी मित्र को वही क्रिया दुहराने को प्रेरित किया। गार्ड साहब शंकित हो गये और अगले स्टेशन तक पहुंचते-पहुंचते वे सचमुच गर्म हो गये। सारा शरीर गर्म हो गया और तापमापक यन्त्र (थर्मामीटर) 102 ज्वर भी चढ़ा दिखाई देने लगा। शोक या हर्षातिरेक से सहसा मर जाने वालों की संख्या कम नहीं है। हमारे देश में महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और मद्रास के मुख्यमंत्री अन्नदुराई की मृत्यु पर कुछ व्यक्तियों के शोक के आघात से मरने के समाचार आये हैं। सहसा लाख दो लाख की लाटरी मिल जाने पर हर्षातिरेक में भी कुछ

व्यक्ति मर गये हैं या गम्भीर रूप से बीमार हो गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि 'भावना' का मनुष्य के शरीर पर भला - बुरा प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसीलिये कहा भी है-"**मनएव मनुष्याणां कारणं सुखदुःखयोः**" (मन ही मनुष्य के सुख-दुःख का कारण है) और "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" अतः जो मन के विकारों पर नियन्त्रण कर लेते हैं वे सचमुच स्वस्थ रहते हैं। अतः जीवित रहने की इच्छा को प्रबल बनाये रखने से मनुष्य का छीजन रूक सकता है। वैदिक ऋषि प्रतिदिन प्रातः प्रार्थना करते थे-'**जीवेम्शरदः शतम्**' (हम सौ वर्ष तक जीवित रहें) महामृत्युञ्जय मंत्र ये है-'**त्रयम्बक यजामहे, सुगन्धिं-पुष्टि वर्धन उरुवारुकं इव, बन्धनात् मृत्योः मुक्षीय मामृतात**' भी मृत्यु के पाश से मुक्ति और अमरत्व प्रदान की त्र्यंबक से प्रार्थना है। इसमें आत्म-संकेत (Auto-suggestion) का भाव है। उपचेतनमन इन भावों को ग्रहणकर शरीर की कोशिकाओं को स्वस्थ बनाने के लिये साधन जुटाता रहता है। प्राणशक्ति के क्षीण हो जाने पर शरीर का दूषित मल बाहर नहीं निकल पाता। अतः वह शरीर के सन्धि-स्थानों में जम जाता है जिससे गठिया आदि रोग आ घेरते हैं, रक्त का संचार भलीभाँति नहीं हो पाता, मस्तिष्क तथा ज्ञान-तन्तुओं की लचक चली जाती है। वे कड़े पड़ जाते हैं और फिर हम क्रमशः छीजने लगते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि यदि प्राणशक्ति कम करने वाली बातों को हम दूर कर सकें तो हम सहज ही दीर्घायु बन सकते हैं। शरीर के अन्दर के विषाक्त-पदार्थों को दूर करने की ओर हमारा ध्यान सबसे प्रथम रहना चाहिये। अमरीका के प्रसिद्ध व्यायामाचार्य बरनर मेकफेडन का मत है कि 'हम अपने दाँतों से ही कब्र खोदते हैं। हम अधिक खाकर कम जीने लगे हैं।' अति भोजन से पेट के अंगों पर अनावश्यक बोझ पड़ता है। परिणामतः बिना पचा हुआ भोज्य-पदार्थ अन्तड़ियों में पड़ा सड़ता रहता है और धीरे धीरे शरीर को विषाक्त बना डालता है। सारी बीमारियों की जड़ कोष्ठबद्धता है और यह अति भोजन से पैदा होती है। डाक्टरों का मत है कि बद्धकोष्ठता से ही अपेण्डि-साइटिस, (आंत्रपुच्छशोथ, कैंसर-अर्बुद-फोड़ा) आदि रोग पैदा होते हैं और शरीर को बर्बाद कर डालते हैं। इसलिये सबसे पहले बद्धकोष्ठता को दूर करने के उपाय बताये जाते हैं। कब्ज होने का एक मुख्य कारण हम ऊपर बता चुके हैं। वह है भोजन की अनियमितता, कभी अधिक भोजन करना, कभी एक ही प्रकार का भोजन करना। अधिक गर्म पेय पीना, दिन भर कुछ न कुछ खाते रहना आदि। यदि कब्ज साधारण हो तो निम्न उपाय सफलता से काम में लाये जा सकते है-

(1) उत्तेजक पेय पदार्थों का पीना बन्द कर दो।

(2) कमरे के अंदर अधिक समय तक मत रहो। सुबह-शाम बाहर घूमने जाने की आदत डालो।

(3) भोजन में नियमितता लाने का अभ्यास डालो, बीच में दिन भर खाते रहने की आदत त्याग दो।

(4) सोने के पूर्व गर्म पानी एक गिलास भर पी जाओ। सुबह उठने पर 4 बजे के करीब एक गिलास ठंडा जल पी जाओ। इसे आयुर्वेद में 'उषापान' कहते हैं।

(5) रेचक वस्तुओं का अधिक सेवन मत करो। जुलाब लेते रहने से अन्तड़ियाँ कमजोर पड़ जाती हैं।

(6) रात का जागरण टालो। कमसे कम सात घण्टे सोने की आदत डालो। शाम के

भोजन और सोने में कम से कम तीन घंटे का अन्तर रहना चाहिये। भोजन करते ही सो जाने से भोजन भलीभाँति नहीं पच पाता।

इनके अतिरिक्त खिंचाव के व्यायाम भी करते रहना चाहिये। सुबह ठण्डे जल का प्याला पीने के पश्चात निम्न व्यायाम कीजिये-

(1) सीधे खड़े हो जाइये। दोनों हाथों को मकान की छत की ओर सीधे ले जाकर खींचिये मानों आप छत को छू रहे हों। इसे **ताड़ासन** कहते हैं। इस प्रकार कम से कम दस बार कीजिये।

(2) सीधे खड़े हो जाइये, फिर पीछे जितना झुकते बने झुकिये। हाथों को सिर के पीछे ले जाइये, दस बार कीजिये।

(3) सीधे खड़े होकर दोनों पैरों को पृथक्-पृथक् कीजिये और बिना घुटना झुकाये जमीन को हाथों की अँगुलियों से छू लीजिये। इस प्रकार दस बार कीजिये।

(4) सीधे चित्त लेट जाइये। घुटनों को मोड़कर जिस प्रकार साइकिल चलाते हैं, चलाइये। अधिक से अधिक पाँच मिनट तक कीजिये। इस व्यायाम से पेट की अन्तड़ियों का आकुञ्चन-प्रसरण अच्छा होगा और कब्ज दूर होने में सहायता मिलेगी।

(5) जिन्हें योग के आसन अभ्यस्त हो गये हो वे **सर्वाङ्गासन** अथवा **विपरीतकरणी** पाँच मिनट तक कर सकते हैं। पर ये आसन शाम को करने से अधिक लाभप्रद होते हैं। प्रातः करना ठीक नहीं है।

व्यायाम के अतिरिक्त भोजन में ये वस्तुएं होनी चाहिये- कम से कम आधा सेर दूध, कुछ मौसमी पके फल, एक पत्तीदार बिना पका हुआ शाक, एक पकी हुई शाक, दाल, दो बगैर छने आटे की चपाती (हाथ की बनाई हुई रोटी) चपातियों में पर्याप्त घी या मक्खन और अन्त में दही या छाछ। दिन भर में आवश्यकतानुसार कम से कम चार गिलास जल पीना चाहिए। उपर्युक्त उपायों तथा नियमों के पालन करने से कब्ज अथवा कोष्ठबद्धता दूर हो जायेगी, जिससे शरीर में विषाक्त पदार्थ अपना घर न बना पायेंगे।

—※—

वेदान्त में कर्म का अर्थ है—आत्मा के साथ एक होकर चेष्टा करना, अखिल विश्व के साथ एक हो जाना तथा उस अद्वितीय परम तत्व के साथ निःस्वार्थ संयोग प्राप्त करना।

विवेकानन्द ने कहा था...

गुरु और अवतार

जहाँ कहीं प्रभु का गुणगान होता हो, वही स्थान पवित्र है। तो फिर जो मनुष्य प्रभु का गुणगान करता है, वह कितना पवित्र होगा! अतएव जिनसे हमें आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त होती है, उनके समीप हमें कितनी भक्ति के साथ जाना चाहिए! यह सत्य है कि संसार में ऐसे धर्मगुरुओं की संख्या बहुत थोड़ी है, पर संसार ऐसे महापुरुषों से कभी शून्य नहीं हो जाता। वे मानव जीवन के सुन्दरतम पुष्प हैं और 'अहेतुक दयासिन्धु' हैं। श्री कृष्ण भागवत में कहते हैं, "मुझे ही आचार्य जानो।" यह संसार ज्यों ही इन आचार्यों से बिल्कुल रहित हो जाता है, त्यों ही वह एक भयंकर नरककुण्ड बन जाता है और नाश की ओर तीव्र वेग से बढ़ने लगता है। साधारण गुरुओं से श्रेष्ठ एक और श्रेणी के गुरु होते हैं, और वे हैं—इस संसार में ईश्वर के अवतार। ये केवल स्पर्श से, यहाँ तक कि इच्छा मात्र से ही आध्यात्मिकता प्रदान कर सकते हैं। उनकी इच्छा से पतित से पतित व्यक्ति भी क्षण भर में साधु हो जाता है। वे गुरुओं के भी गुरु हैं—मनुष्य के माध्यम से ईश्वर की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। उनके माध्यम के अतिरिक्त हम अन्य किसी भी उपाय से भगवान् को नहीं देख सकते। हम उनकी उपासना किये बिना रह नहीं सकते, वास्तव में वे ही एकमात्र ऐसे हैं, जिनकी उपासना करने के लिए हम विवश हैं।

इन मानवीय अभिव्यक्तियों के माध्यम बिना कोई मनुष्य ईश्वर-दर्शन नहीं कर सकता। जब हम अन्य किसी साधन द्वारा ईश्वर-दर्शन का यत्न करते हैं, तो हम अपने मन में ईश्वर का एक भीषण व्यंग्य-रूप गढ़ लेते हैं और सोचते हैं कि यह व्यंग्य-रूप ईश्वर के प्रकृत स्वरूप से निम्नतर नहीं है। एक बार एक अनाड़ी आदमी से भगवान् शिव की मूर्ति बनाने को कहा गया। कई दिनों के घोर परिश्रम के बाद उसने एक मूर्ति तैयार तो की, पर वह बन्दर की थी! इसी प्रकार जब हम ईश्वर को तत्त्वतः उसके निर्गुण, पूर्ण स्वरूप में सोचने का प्रयत्न करते हैं, तो हम अनिवार्य रूप से उसमें बुरी तरह असफल होते हैं, क्योंकि जब हम मनुष्य हैं, तब तक मनुष्य से उच्चतर रूप में हम उनकी कल्पना नहीं कर सकते। एक समय ऐसा आयेगा, जब हम अपनी मानवीय प्रकृति के परे चले जायेंगे, और तब हम उसे उसके असली रूप स्वरूप में देख सकेंगे। पर जब तक हम मनुष्य हैं, तब तक हमें उनकी उपासना मनुष्य में और मनुष्य के रूप में ही करनी होगी। तुम चाहे कितनी ही लम्बी-चौड़ी बातें क्यों न करो, कितना भी प्रयत्न क्यों न करो, पर तुम ईश्वर को मनुष्य के सिवा और कुछ सोच ही नहीं सकते। तुम भले ही ईश्वर और संसार की सारी वस्तुओं पर विद्वतापूर्ण लम्बी-लम्बी वक्तृताएँ दे डालो, बड़े युक्तिवादी बन जाओ और अपने मन को समझा लो कि ईश्वरावतार की ये सब बातें अर्थहीन और व्यर्थ हैं, पर क्षण भर के लिए सहज बुद्धि से विचार करो। इस प्रकार की अद्‌भुत विचार-बुद्धि से क्या प्राप्त होता है? कुछ नहीं—शून्य केवल कुछ शब्दों का ढेर!

क्रमशः

उन्नति के लिए इच्छाशक्ति जागृत करें।

विजय पण्डित

मानव, सृष्टि की अभूतपूर्व एवम् महान रचना है। ईश्वर निश्चित ही ऐसी कृति से चमत्कृत हो गया होगा। सम्भवः तभी देवता स्वयं मनुष्य का रूप धारण करके अवतरित हुआ करते हैं। लेकिन इस सृष्टि के मूल में जो एक मात्र तत्व है वह है इच्छा। सृष्टि का कारण पूर्ण रूप से सृष्टिकर्ता की इच्छा का ही परिणाम है। इच्छा ही बीज है। मानव जो भी इच्छा करता है वह अवश्य होती है, आज नहीं तो कल। इच्छा की परिणति शाश्वत होती है, आज नहीं तो कल इसकी पूर्ति होती ही है। इसका कभी विनाश नहीं होता। एक बार की गई इच्छा तत्काल अनन्त में विलीन हो जाती है। अतः मानव को सदैव उच्च एवं महान स्वप्न देखने चाहिए। महान दार्शनिक व वैज्ञानिक आने वाले कल के अन्वेषणों के विषय में पहले से ही एक विशेष दृष्टि से मनुष्य की आने वाली पीढ़ी हेतु अविष्कारों एवम् अन्वेषणों के बल पर सुविधा देने के लिए अपने मन में एक विशेष संकल्प लेकर चलते हैं जो कि निश्चित रूप से उनकी इच्छा शक्ति से संचालित होती है। वर्तमान का स्वरूप क्या है यह सब जीवनोपयोगी सुख-सुविधायें द्रुत गति-शीलयान, दूरसंचार की अति विकसित प्रणाली तथा इसी प्रकार मानव के कल्याणार्थ बनाये गये अन्वेषित सभी साधन सब मानव की इच्छा की ही परिणति हैं। जैसे कि एक वैज्ञानिक से दूसरे वैज्ञानिक तक शनैः शनैः मानव हितानुकूल बनाने में सदैव तत्पर रहे एवम् आधुनिक मानव जाति को सभ्यता की एक चरम बिन्दु तक ले आये। किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए आप कल्पना तो कीजिए। मन में इच्छा तो जागृत कीजिए। इच्छा जागृति से भय कैसा, वह तो अपने हाथ में है।

इच्छा के पश्चात् ही आप उसके क्रियान्वयन के लिए कदम बढ़ाते हैं। महान वैज्ञानिक एडिसन, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, अब्राहम लिंकन, महात्मा गांधी, गैलीलियो जार्ज, स्टीवेन्सन, मैडम क्यूरी, मोर्स, नेपोलियन सिकन्दर, अकबर, गुडइयर, जगदीश चन्द्र बसु जैसे सैकड़ों नाम हैं जो कि एक साधारण मनुष्य के रूप में अवतरित हुए लेकिन अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति और इच्छा के कर्म में रूपान्तरण से विश्व के महानतम् व्यक्तियों के रूप में जाने गये। मानव को परम्परा से जो उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है उसमें सबसे दिव्य है, इच्छा करने या स्वप्न देखने की शक्ति। यदि आज हम कष्ट उठाते हैं तो कुछ चिन्ता की बात नहीं। हमें विश्वास होना चाहिए कि कल हमारे दिन बदलेंगे। अतः इच्छा को सृष्टि के मूल रूप में स्वीकार करना चाहिए। सभी शरीरों में सब प्रकार का योग सम्भव नहीं हो पाता है। मान लीजिए आज आपको घास खाने की इच्छा हुई तो एक दिन आपको इस प्रकार का शरीर धारण करना पड़ेगा। जिससे कि आपकी वह इच्छा पूर्ण हो सके। ऐसा शरीर धारण किये बिना वह इच्छा अतृप्त रह सकती है। जिस प्रकार की इच्छा होती है वैसा ही शरीर भी धारण करना पड़ता है। दुविधा से, कष्टों से, विपरीत वातावरण से अपने आपको उबारकर सत्य, शिव तथा सुन्दर वातावरण में समन्वय तथा सामंजस्य के वातावरण में ले जाने का अमोघ साधन है स्वप्न व इच्छा।

न हन्यते हन्यमाने शरीरे

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—गीता 2/20

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता ।

× × ×

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

—गीता 2/23

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती ।

श्री ऋषिश्वर नहीं रहे

'सिद्धयोग' परिवार यह सूचित करते हुए अत्यधिक व्यथित है कि योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के अनन्यनिष्ठ शिष्य श्री कृष्णदेव ऋषीश्वर का गत 6 जून 1997 को निधन हो गया । भिण्ड (म० प्र०) निवासी श्री कृष्णदेव ऋषीश्वर 60 वर्ष के थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में श्री गिर्राज जी (बृजधाम) प्रवास के दौरान राधाकुण्ड पर पद्मासन की अवस्था में ध्यानमग्न थे । उसी अवस्था में ही उन्होंने अभय गोद प्राप्त की ।

'सिद्धयोग' परिवार दिवंगत आत्मा को शान्ति और उनके परिवार के सदस्यों को दुःख की इस घड़ी में धैर्य धारण करने की शक्ति देने को परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता है ।

—सम्पादक

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008 JULY 1997

प्रेषण कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सथाई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER

Book Post

श्री

महिमा भगवान की !

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।

अथर्व॰ 10, 8, 32

अर्थात्

यह भगवान की महिमा है कि वह न बूढ़ा होता है, न मरता है, केवल वही एक रस रहता है। शेष सब मृत्यु द्वारा ग्रसे जाते हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक—बिनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज,